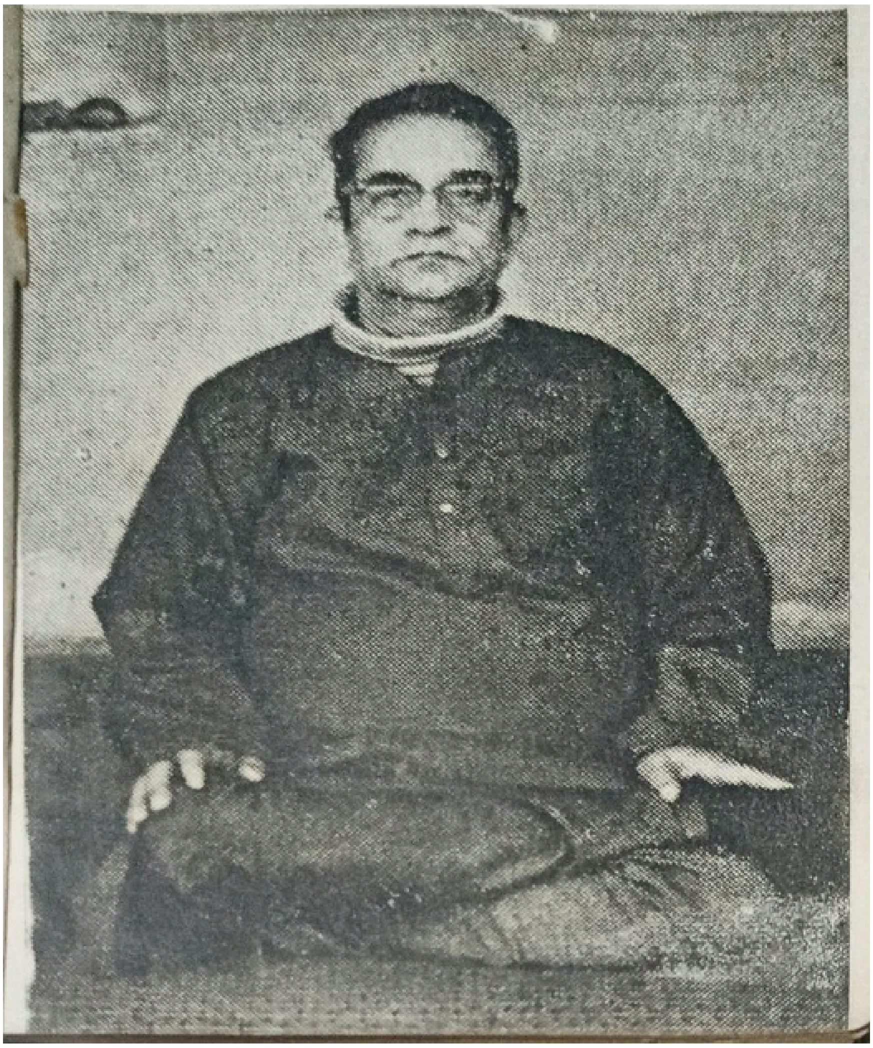


महर्षि मुक्त सूत्र-सागर (प्रथम तरंग)



महर्ष िमुक्त सूत्र-सागर

(प्रथम तरंग)

प्रकाशकः- महर्ष मुक्त साहहत्य प्रचारक सममतत (केन्द्र दुगु)ि

प्रकाशन ६

मूल्य-१-५०

भार्ोद्गार

महर्ष िमुक्त सूत्र सागर में संकमित सूत्र, व्यापक व्याप्य अखंड अनन्द्ता-अनंत रूप शब्द-ब्रह्म महोदधि की हहिोरें हैं। एक ही हहिोर-सूत्र का स्पश ि(हृदयंगम हो जाना) ब्रह्म स्पश िसंस्पश िप्रदान करने ेकी क्षमता रखता है ।

यह प्रशंसा नहीं- अनुभर्ोद्गार है ।

परमानन्द्द शास्त्री
अध्यक्ष
महर्ष िमुक्तानुभूतत साहहत्य प्रचारक
सममतत केन्द्र दुगु ि(म. प्र.)

महर्ष िमुकुत सूत्र-सागर

(प्रथम तरंग)

१. व्यक्त्तत्र् के िोप में ईश्र्रत्र् तनहहत है ।

२. जीर्त्र् एरं् ंईश्र्रत्र् दोनों का अभार् ही ईश्र्रत्र् है ।

३. स्र्देश का नागररक बनो, पर-देश का नहीं।

४. स्र्देश का बबना नागररक बने नागारिकता भी अक्स्तत्र्हीन है ।

५. स्र्देश में सोमा की भी सीमा नहीं ंहै।

६. जहा ँस्र्त्र् ही देश है र्हीं स्र्देश है।

७. स्र्त्र्, परत्र् दोनों भार्ों का जो अभार् उसका जो भार् र्हीं स्र्देश है ।

८. जहा ँका नागररक बनने के मिए सारा र्ंश्र् प्रयत्नशीि है ।

९. जहा ँपहुंचकर सभी देशों के पासपोरि् रद्द हो जाते हैं र्हीं स्र्देश है ।

१०. जहा ँजाना है र्हींपर खडा है, र्हीं स्र्देश है

११ क्जस मुल्क से जुदा होने पर खुदा की भी हस्ती नेस्त नाबूद हो जाती है, र्हीं स्र्देश है

१२. क्जसकी तिाश ही देश की जुदाई है, र्ह स्र्देश है ।

१३. स्र् क्स्तित राष्ट्रपतत है।

१४. आिोभार् ही प्रिानमंत्री है ।

१५. र्ंधि-तनषेि का अत्यन्द्ताभार् ही र्ंिान है।

१६. अक्स्तत्र्हीन प्रपंच ही प्रजा है।

१७. अक्रियता ही शाही सेना है।

तनस्पृहता ही शाही कोष है ।

१८.

सहजार्स्थिा ही शाही तख्त है ।

१९.

'म'ॅ शहन्द्शाह है।

२०.

२१. 'म'ॅ के अततररक्त कुछ भी नहीं, यही अंग- रक्षक है। र्स्तुतः यही देश स्र्देश है ।

२२.

ब्रह्मभ्यास न करने ेका अभ्यास ही ब्राह्मी क्स्तित है ।

२३.

क्स्तित अक्स्तित के अभार् का भार् ही स्र्भार् है ।

२४.

धचत का अि िही धचत्त है, शेषे धचत है।

२५. धचत ही धचत्त, धचत्त ही धचत है,

धचत र्ज्ञापक, धचत ही धचत्त ।

धचत र्कल्प, र्कल्पक धचत है,

धचत्त न्र्त,ि न्र्तकि धचत ।

धचत है बबम्ब, धचत्त प्रततबबम्बत,

धचत सागर आर्त िहै धचत्त ।

धचत्त अधचत्त उभय तज, धचत भज,

चर्पर् हो सब अन्द्र्धचत्त ।।

मसद्र्धिति की अमभव्यक्क्त में व्यक्त का व्यक्तत्र् तनहहत है ।

व्यक्तत्र् के प्रदशनि में मसद्र्न्द्ति ततरोहहत हो जाता है।

२६.

स्र्रुपक्स्तित दृढ़ कैसे हो इस र्कल्प के अभार् देश में स्र्रुपक्स्तित दृढ़ है।

२७. अदृढ़ से अतीत और दृढ़ से परे जो पद है र्ही दृढ़ क्स्तित है ।

२८. क्जस देश में दृढ़ अदृढ़ दोनों भार् न्द्र्ध्या- पुत्रर्त् ्हैं र्ही दृढ़ क्स्तित है ।

यहद दृढ़ का र्कल्प दृढ़ है तो दृढ़ का र्कल्प नहीं ंऔर यहद अदृढ़ है तो अदृढ़ का भी र्कल्प नहीं ं।

२९.

३०.

३१.

३२. र्ए्कल्पक यहद र्ए्कल्प है तो र्ए्कल्प नहींऔर यहद अर्ए्कल्प है तो भी र्ए्कल्प नहीं।

३३. र्ए्त िकैसा अनोखा जादूगूर है क्रक : र्ए्तकि को अपनेअभार्कि में छुपा रखा है।

३४ अि िर्ए्त िहै, र्स्तु र्ए्तकि है।

३५. गमनागमन के अक्स्तत्र् में मुक्क्त का प्रयास आडम्बर है।

३६ जीर् के जीत्र् का यहद अक्स्तत्र् है तो र्ह र्स्तुतः अक्स्तत्र् है ।

३७ म ैंकैसा िाममशिा बेर्कूफ हूं क्रक 'म'ैं को 'म'ैं ही ढूंढ़ रहा हूं।

३८ म ैंकैसा तअल्लुकि से बरी हूं क्रक जो भी. देखनेचिता है र्ह भी 'म'ैं ही हो जाता है।

३९. 'म'ैं के ओढ़नेकी आसमानी चादर कैसो फरजी और झीनी है क्रक इसका उठाना हर एक के मिए दुश्र्ार है।

बिो बबना बिो के बिो का बिो भी नहीं होता।

खुद र्ना खुद के खुद का खुद चश्मदीद नहीं होता।

नारायण तत्र् के बिो का यही स्र्रूप है क्रक म ैंक्या हूं इस र्ए्कल्प का सदा के मिए अभार् हो जाय।

४०. पूण िबिो के अभार् में ही समाधि के र्ए्कल्प का र्ए्कल्प है।

४१. आत्मकल्याण के सािन का फि आत्मदशनि की व्याकुिता है।

४२. अक्स्तत्र्हीन जीर् को भगर्द्दशनि में कोई अधिकार नहीं ं।

४३. मंहदर मक्स्जद आहद भगर्ान र्ए्योग के शोकस्ि िहै।

४४. जो तीन कािा में न हो, सत्य र्स्तु को छुपािो उसको र्ए्त िकहते हैं।

४५. अक्स्तत्र्हीन र्ए्त िही र्ए्तकि है।

४६. मन के भार् अभार् के भार् का अभार् क्ज देश में हो जाता है र्ह 'म'ैं है।

४७. पदिा िके अक्स्तत्र् को स्र्ीकार करना ही पदिा िका अि िहै।

४८.

४९.

५०

५१. अक्स्तत्रहीन पदिा ियहद भासता है तो र्ह अक्स्तत्र् ही है ।

५२. दृक्ष्ट्र् के अभार् में यहद सृकूष्ट्र् है तब सृकूष्ट्र् है, नहीं ंतो दृक्ष्ट्र् ही सृकूष्ट्र् है ।

५३ र्ेकल्प भार् में जो भामता है और अभार् मे नहीं ंभासता र्ह र्ेकल्प है ।

५४. भार् अभात्र दोनों में जो भासता है र्ह र्ेकल्प है ।

५५. र्ेकल्प का अनुरूप र्ेकल्प में ही तनहहत है, पदिा िमें नहीं।

५६ अपनेम ैंको कुछ भी न मानने पर ही मन र्श में होता है ।

५७ अपनेम ैंको कुछ भी न मानने पर 'म'ैं स्र्- भार् हूं और कुछ भी मानने ेपर पर भार् हूं।

५८. शंकाओं का मूिोच्छेद तनःशंकानुसंिानि में तनहहत है।

५९. शंकाओं का पुज्ज तनःशंक की उपेक्षा का पररणाम है ।

६०. बिो बबना ध्यान िारणा आहद पेंमसि की िकीर है।

६१. भगर्ान को कुछ मानने से म ैंका कुछ नहींबबगडता और 'म'ैं को कुछ भी मानने ेसे भगर्ान किंक्रकत हो जाता है ।

म ैंब्रह्म हूाँ, यह र्ैषम्य भार् है और 'म ैंहूं' यही समभार् है जिसे्र श्री गीताकार के शब्दों में समत्र् योग है

६२.

।

६३.

म ैंब्रह्म हूाँ इस भार् के धचन्द्तन मे देशकिा की सीमा है और 'म'ैं हूं, इस भार् में सीमा की भी सीमा नहीं ं है ।

खींची हुई रेखा मत ममर्ाओं अर्पतु बडी रेखा खींच दो ।

६४. क्रकसी भी देश, किा, र्स्तु के अि िको ग्रहण न करना ही आधिकि र्ेकास है ।

६५. जो र्स्तु जैसी है उसको र्ैसे ही जानना ही नैततक उत्िानि है ।

६६. सम र्ेषम दोनों भार्ों के अभार् के भार् की एकता ही राष्ट्रीय एकता है ।

६७ समस्त जगत के र्ेकल्प भार् का अभार् ही सामाक्जक स्िुार है ।

६८

६९. म ैंके अततररक्त म ैंमें अन्द्य भार् न आना ही राष्ट्र की प्रगतत है ।

७० शत्रु ुममत्र दोनों र्ीकल्प के र्ीकल्प का त्याग ही राष्ट्र की र्ीजय है ।

७१ अपररक्च्छन्द्न में पररक्च्छन्द्न भार् न आना ही राष्ट्रीय अक्षुण्ण ध्र्ज है ।

७२. जो व्यक्क्तत्र् का बिाक एर्ं र्ीक्षेप का कारण हो र्ह भगर्ान ही क्यों न हो, सर्ाि त्याज्य है।

७३. त्याज्य र्स्तु के त्याग में धचत्त यहद दूरू भागता है तो उसके मोहासक्त का कारण है।

७४. सर् िके त्याग में ही कैर्ल्यपद तनहहत है ।

७५ ब्रह्म पररपूण िहै इसमिए र्ीश्र् र्ीर्त िभी पररपूण िहै ।

७६. यह ब्रह्म है, यह जगत है, दोनों र्ीकल्पों के अभार् में ही ब्रह्मानंद तनहहत है ।

७७. सर् िकुछ 'म'ैं हूं- यह र्ीधि र्ाक्य है, 'म'ैं सर् िसे परे हूं- यह तनषेि र्ाक्य है । दोनों भार्ों का अभार् सहज मुस्कान है ।

सहज मुस्कान ही भगर्ान का ध्यान है, ऐसा ध्यान ही धचत्त का समिाान है ।

प्रपंच की अतनर्चिनीयता आत्मा का अनुरुप है।

जो सहज है र्ह सहज है।

७८ अभ्यास न करनेका अभ्यास सहजानुभूतत में तनहहत है ।

७९. त्याग करने का त्याग, ग्रहण-त्याग के त्याग में ततरोहहत है ।

८०. ग्रहण त्याग दोनों का त्याग स्र्ानुभूतत का पराग है ।

८१. स्र्ानुभूतत की अनुभूतत ब्रह्माण्ड की र्ीभूतत है।

८२. ब्रह्मा, र्ीष्णु, मशर्ाहदक का भी सामर्थय िसुनकर अिर्ा देखकर स्र्प्न में भी धचत्त डांर्ाडोि न हो यही आत्मतनष्ठा है ।

८३. शरीर का कोई भी अंग भंग हो जानेपर क्जस प्रकार मनुष्ट्य खंडडत हो जाता है इसी प्रकार एक कण

८४. को भी भगर्ान से मभन्द्न माननेपर भगर्ान की अखंडता खंडडत हो जाती है।

८५

८६.

८७. म ैंजीर् हूं, यह र्ईकल्प जीकृत नहीं ंभगर्ान कृत है ।

८८. क्षिण प्रमाण से जो मसद् हो ई मसद्धान्द्त है और जो प्रततज्ञार्ाक्य से मसद् हो ई अपर्ाद है ।

८९. मसद्धान्द्त र्ास्तर्ईक होता है, अपर्ाद र्ैकक्ल्पक ।

९०. क्रकसी भी देश, कि, र्स्तु के अत्यन्द्ताभार् में ही, (ममर्थयात्र् में नहीं, ं दुुःख की आत्यक्न्द्तक तनर्ृतृत है ।

९१. आत्मतनष्ठा अनन्द्त शक्क्तयों का स्रोत है।

९२. आत्मतनष्ठा का स्र्ागत अनन्द्त शक्क्तयों का आर्ाहन है।

९३. जो तीन कि में है ही नहींई असत्य है।

९४. जो उत्पन्द्न होकर नाश हो जाय ई ममर्थया है।

९५. अन्द्य में अन्द्य का भान होना अध्यास है।

९६. भान में अहंभार् होना अमभमान है ।

९७. मन, र्चन,कम िद्र्ारा जो भजन क्रकया जाय ई माया का है, भगर्ान का नहीं।

९८. मनैं ेभजन क्रकया, कर रहा हूूँ, करुंगा इन तीनों र्ईकल्पों का अभार् ही परम भजन है।

९९. अस्र्ाभार्ईक माया का भजन है, स्र्ाभार्ईक भगर्ान का ।

१०० अस्र्ाभार्ईक माया है, स्र्ाभार्ईक स्भार् (मायापतत 'म' ैं)

. स्र्भार् में कुछ भी र्ईकल्प देखना ही माया है ।

१०१ 'माया है' इस र्ईकल्प भार् के अभार् का अनुभर् करना ही माया से तरना है ।

. भार् का भार् और अभार् का भार् दोनों भार्ों का जो अभार्, ईी स्र्भार् है ।

र्ईकल्प के अत्यन्द्ताभार् में ही र्ईकल्प का त्याग तनहहत है ।

१०२

प्रश्न- यार, दुतुनया तुझेखुदा क्यों कहती है ?

.

१०३

.

१०४

.

१०५

.

उत्तर- इसमिए क्रक कहनेर्ाों का खुद हूाँ ।

१०६. प्रश्न- यार, सबका खुद होने ेसे तेरा ममिना बडा आसान है क्रफर तेरी तिाश में दुतुनया क्यों मुक्श्िा है?

उत्तर- तिाश हीतो मेरे छुपने की झाडी है ।

प्रश्न- जब सभी का तू ूखुद है तो छुपना क्रकससे ?

१०७. उत्तर- ऐसा सर्ाि ही बेर्कूफी है ।

मन, र्चन, कमजिन्द्य पररक्च्छन्द्न काय िमें र्ईक्षेप आ जाने पर जब र्ईक्षेप नहीं होता तो अपररच्छन्द्न काय ि(आत्मधचन्द्तन) में र्ईक्षेप से र्ईक्षेप क्यों ?

१०८. र्ईक्षेप का र्ईकल्प होना ही र्ईक्षेप है ।

र्ईकल्प का र्ईकल्प होना स्र्ानुभूतत की शून्द्यता का पररचायक है।

१०९. आत्म धचंतंन की धचंतंन भार् में जीर्भार् तनहहत है और अधचंतंन भार् में स्त्र् भार् तनहहत है ।

११०.

१११.

११२. जीर्त् भार् के अभार् में ही ऐहहक पारीौक्रकक कतृतर्् भार्ों का अभार् है ।

११३. क्रकसी किा अर्ा क्रकसी भी पररक्स्तित में भजन करनेका संकल्प ही ना हो, बस यही परम भजन है क्रकंतु यह है कृपा साध्य (इतना ही है कृपा सिा ुबाकी सब सिान साध्य है ।

यार का ममिन इतना आसान है की क्जसकी आसानी ही परेशानी है

११४. यार इतना खूबसूरत है क्रक क्जसकी खूबसूरती ही बदसूरती है ।

११५. यार इतना िबिाब है क्रक क्जसमें तमाम खाममयां ही नजर आती है ।

११६. चुनाचे ेयार के मुतअक्ल्कि जो कुछ भी कहना हो तो गंगा बनाकर कहो ।

११७. ध्यान का भी ध्यान न करना ही ध्यान है ।

११८. देखने को भी न देखना ही दशनि है।

११९. कुछ भी जानने की इच्छा न करना ही ब्रह्म क्जज्ञासा है ।

१२० मन का अक्रिय हो जाना ही अक्रियपद है ।

१२१.

१२२. मन को अक्रिय बनानेके मिए मन, र्चन, कम िद्व्ारा कुछ भी सिान न करना ही परम सिान है ।

१२३. सिान करने से मन अक्रिय होता है। (मन) सिान न करनेसे मन अक्रिय हो जाता है। (रुभार्)

कुछ भी न करने ेका अभ्यास करना ही अभ्यास है ।

१२४. मनोजन्द्य भार् का अभार् परभार् में तनहहत है, मन भार् का अभार् रुभार् में

१२५. तनहहत है।

परभार् में ही अभ्यास का र्ईक् ्है रुभार् में नहीं ं। 1

१२६. हदि का दरर्ाजा खर्खर्ाकर आजादी आर्ाज दे रही है क्रक ऐ नादान ! क्जसकी तुझे ेतिाश है. र्ह तेरे

१२७. चारों तरफ है, क्जसे कहतेहैं आजादी । खाततर कर, ध्यान कर दीदार कर । बेहोश हो, खामोश हो,

फरामोश हो ।

जहां ंहो र्हींरहो, जैसे हो र्ैसे ही रहो बस यही बिो है ।

बबना प्रयास के संकल्प शांत होनेपर जो शेष रह जाय र्ही आजादी है। क्जसमें- सभी को बरबादी है।

१२८. क्रकसी प्रयास से संकल्प शांत करने ेकी चेष्ट्रा करना संकल्पों का बाजार बर्ोरना है।

संकल्प के शांत अशांत का र्ैकल्प, जीर्देश का मेमोररयि हिा है ।

१२९. क्जतना अनुराग स्त्री में होता है उतना ही क्रकसी संत में हो तो स्त्री भी भगर्ान ही हदखाई पडे े।

१३०. क्षणणक सूख के मिए स्त्री की गि्ुामी पसंद है िेक्रकन संत की गि्ुामी में शम िहै।

१३१. प्रपंच से राग और भगर्ान से र्ैराग्यरर्ों का असत्य पर पूरा धिकार होता है ।

१३२. आत्म र्ैस्मृतृत ही असत्य तनष्ट्ठा का चरम सिान है ।

क्जस समय समाधि और धचन्द्तन के अहंभार् का अभार् हो जाय तब समझना क्रक यही समाधि, धचन्द्तन,

१३३. आजादी या खुदा की सच्ची इबादत है ।

१३४. चराचर में जो अद्र्र्तीयत्र् र्ही स्त्र् है।

१३५. िा, है, रहेगा ये तीनों किार्चक क्रिया है । कािातीत देश में कतिा, कम,ि क्रिया तीनों का अत्यन्द्ताभार्

१३६.

१३७.

१३८.

है ।

१३९ जो र्षय जैसा भासता है र्ैसा ही उसके समान दूसूरा भी भासै तो र्षय है, नहीं ंतो भगर्ान है ।

१४०. यहद र्षय को र्षय मसद्ध करता है तो र्षय है, नहींतो भगर्ान है ।

१४१. यहद र्षय में र्षय भासता है तो र्षय है, नहींतो भगर्ान है ।

१४२. र्कल्प का र्कल्प भी तो एक र्कल्प है।

१४३. अध्यास की पृष्ठभूमम अधिष्ठान का अज्ञान है।

१४४. अध्यास का अहंभार् अमभमान है ।

१४५. आत्म में देहाहदक का भान होना अध्यास है।

१४६. ज्ञान फायरे क्स्ग्यूसर (Fierextinguisher) है ।

१४७. आत्मा को क्रकसी भी र्षय का र्षय करनेमें अन्द्य उपकरण की अपेक्षा नहीं ं।

१४८. आत्मा की स्मृतृत में क्रकसी भी र्षयमें जाता हुआ क्िर्र गया हुआ मन तत्किा बबना प्रयास ही आत्मा में िीन हो जाता है।

रुत्र् की पूण ि अनुभूतत में अध्यास का अत्यन्द्त प्रिय है ।

उत्पर्त्त की अनुत्पर्त्त में प्रिय का अत्यन्द्त प्रिय है।

क्जस प्रकार र्षय की अमभन्द्नता में ही र्षय का र्षय है इसी प्रकार परमात्मा की अमभन्द्नता में ही परमात्मा की अनुभूतत है।

१४९. जब संसार का अनुभर् संसार हो जाने पर होता है, तो परमात्मा का अनुभर् उसके मभन्द्नता में कैसे होगा ।

१५०. जाग्रतकिा में, स्र्प्न में यहद आसक्ति है तो र्स्तुत: र्ह स्र्प्न ही है ।

१५१. अर्द्यमान र्स्तु यहद दृश्यमान है तो उसके सतत धचन्द्तन का पररणाम है ।

र्षय में मिुरता र्ैराग्य का अपमान हैं ।

१५२.

१५३.

१५४.

१५५

१५६. रै्राग्य का अपमान रीतराग के अनादर का प्रसाद है ।

१५७ सत्यासत्य का र्ाद सत्ता की उपेक्षा में तनहहत है ।

१५८. सत्तापद तनर्चिनीय है ।

१५९ प्रतीतत, अप्रतीतत दोनों की जो अप्रतातत है, र्ही सत्ता है।

१६०. आकाश क्जसका पररिान है, अनुभतत क्जसकी शय्या है, उसका ही नाम सत्ता है ।

१६१. अनुभर् क्जसका अनुभर् है। । अनुभर् का जो . अनुभर् है। जान मिया तो अनुभर् है जाना नहीं ंपराभर् है।

गागर में भर्सागर है, भर्सागर ही मन गागर है । न गागर है न सागर है, बस एक मुक्त नर्नागर है।

प्रतीतत की जो प्रतीतत है अप्रतीतत की को अप्रतीतत है, स्र्यं न प्रतीतत है. न अप्रतीतत है । प्रतीतत, अप्रतीतत दोनों की संधि में जो क्स्तित है र्ही सत्ता है।

१६२.

जो हदखता है- र्ह हदखता है। म ैंहदखता हूं- तब हदखता है। इस रहस्य को जान मिया क्रफर हदखना कहां

१६३. जो हदखता है।

अभ्यास न करनेका अभ्यास करना यही ब्रह्माभ्यास है।

आत्म सम्मान खोकर कोई र्स्तु प्राप्त होतो है, तो र्ह मृतूयुसे बढ़कर है।

१६४.

क्जस प्रकार भगर्ान के समान दूसरा कोई नहीं,ं इसी प्रकार जो पदिा िजैसा है, उसके समान दूसरा कोई नहीं, इसमिए क्रक र्ह भगर्ान है।

मनोनाश के दो प्रकार है- अरुपनाश और सरुपनाश ।

१६५.

सरुपनाश सािन साध्य है, अरुपनाश कृपा साध्य है ।

१६६.

मोह दो प्रकार का है- मोह और महामोह ।

१६७.

मोह का आिार अध्यास है : महामोह का आिार अधिष्ठान है।

अध्यास में जो भ्रम उसका नाम मोह है, अधिष्ठान में जो भ्रम उसका नाम महा मोह है।

६८.

१६९.

१७०.

१७१.

१७२.

१७३. आत्मा अधिष्ठान है, जगत अध्यास है । सिान का अक्स्तत्र् अध्यास जगत में है, अधिष्ठान

में नहीं ।

१७४.

एक ही पहिू के दो नाम अध्यास कहो या र्द्र्ेत ि।

१७५. अध्यास ४२० होता है । अधिष्ठान र्ईश्र्ास पात्र होता है।

१७६. अधिष्ठान की अनुभूतत ही र्द्र्ेत िकी मृतूयुहै।

अधिष्ठान का अज्ञान ही र्द्र्ेत िका जन्म है।

१७७.

आत्मानुभूतत नानात्र् का अत्यन्द्त् ्प्रिय हैं।

१७८.

जन्म का स्र्ागत मृतूयु का तनमंत्रण है। तत्र्रे्त्ता का आचरण र्किीों की बहस है।

१७९.

क्रकसी भी व्यक्क्त के व्यक्क्तत्र् का अनुभर् उसके काय ि पर अर्िक्म्बत है। पंचर्षीय

१८०. आयुर्िा व्यक्क्त, राजा बहादुर होता है, अतः उस पर र्ईश्र्ास मत करो ।

मन रोको मत, जानेदो ।

१८१.

रोकना है तो मन के रोकनेको रोको ।

१८२.

जानेदेना है तो जानेदेनेको जानेदो ।

१८३. कामनारहहत व्यक्क्त पर ऐहहक, पारिौक्रकक कहीं का भी र्ईनि िागू नहीं ंहोता ।

१८४. ब्रह्मर्रे्त्ता सुप्रीम कोर्ि है, क्जसका तनणयि भगर्ान को भी मान्द्य है। ब्रह्मर्रे्त्ता र्ईश्र् का सम्रार्

है, भगर्ान भ क्जसकी प्रजा है। ब्रह्मर्रे्ता तनभयि और तनरंकुश इसमिए रहता है क्रक र्ह

१८५.

चाह पीता है। अमन चैन चाहो तो कुछ भी न बनो ।

१८६.

१८७.

१८८.

१८९.

१९०.

१९१.

१९२. पीर्ना है तो अपनेआपको कुछ भी मान िो।

१९३. क्रकसी भी र्ष्य से धचत्त की उपरामता के दो कारण होतेहैं। एक पूणतिा दूसूरी अश्रद्िा

१९४. क्रकसी भी देश, किा, र्स्तु में िारणा, ध्यान तिा समाधि के िय का नाम संयम है ।

१९५. जीर् देश का तनर्ासी हमेशा ही िोखेबाज होता है, भगर्ान को भी नहीं छोडता ।

१९६. जीर् जगत के तनर्ासी का असत्य पर पूण ि आधिपत्य होता है । आत्मतनष्ठा ही सच्ची आक्स्तकता है। जीर्

१९७. नगर का नागररक ड्रूिक होता है।

१९८ कम िचार प्रकार के होतेहैं-पुण्य कम,ि पाप कम,ि पुण्य-पाप ममक्षक्षत कम िऔर पुण्य-पाप रहहत कम

१९९ िा

२००. ज्जिा, भय से रहहत पुण्य कम िहै, िज्जा भय के सहहत पाप कम िहै।

अपरिरी को दण्ड देना पुण्य, संकोच भय के कारण दण्ड न देना पाप, दोनों से संयुक्त पुण्य-पाप ममधश्रत कम िहै। पुण्य और पाप दोनों के र्ंकल्पाभार् में जो कम िक्रकये जाये उन्द्हें पुण्य पाप रहहत कम िकहते ेहैं।

आत्मनैक्ष्ठक से ही पुण्य-पाप रहहत कम ि होते हैं। बाकी को िद् दू ूघोडे ेसमझो ।

रुभार् में कमों का र्ंकल्प भार् है। पर भार् में कमों का भार् ही भार् है।

कमों का र्ंकल्प कमों का भार् है। र्ंकल्प का अभार् सर् िका रुभार् है ।

२०१. मन, र्चन, कम िद्वारा क्रकक्चचन्मात्र भी चेष्टा सहज पद की उपेक्षा है।

२०२. सहज भार् ही भगर्ान की अरि् भक्त है।

ज्ञान, अज्ञान, र्द्ि मुक्त के भार् में सहज पद का अभार् है।

२०३.

सहज पद के मिए सािन की अपेक्षा नहीं ंहै।

२०४.

सहज भार् में र्ंधि-तनषेि का अभार् है।

२०५. जो र्स्तु मन, र्ाणी का र्षय नहीं,ं उसके सतत धचतन के मिए मन, र्चन, कम िके तनरिरी-अतनरिरी की

२०६.

२०७.

२०८.

२०९.

अपेक्षा नहीं ं।

२१०. सतत का ही सतत धचतन हो सकता है अन्द्य का नहीं।

२११. क्रकसी भी भार्-अभार् का र्ई कल्प, उसका अभार् ही तूष्ट्णी भार् है ।

२१२. तूष्ट्णी भार् अयत्नतः तनत्य प्रर्ाहशिी है ।

२१३. बाह्य और अन्द्तजगित के स्र्ास्थय की स्स्तिा स्स्िपद के क्स्तित में ही तनहहत है।

२१४. र्ई कल्प का र्ई कल्पक और र्ई कल्प जब दोनों ही एक हैं तो र्ई कल्प से खतरा क्यों ।

२१५. र्ई कल्पक जगत में यहद र्ई कल्प है तो र्ई कल्प नहींऔर र्ई कल्प जगत में यहद र्ई कल्प है तो भी

र्ई कल्प नहीं।

२१६. अमनस्क पद की अनुभूतत, अमनस्क होने का चरम सिान है।

२१७. स्र् का भार् स्र्भार् है ।

२१८. क्जस प्रकार प्रकाश के देखनें का प्रकाश उपकरण है, उसी प्रकार स्र्भार् के अनुभर् का स्र्ाभार्र्ई क
स्र्भार् ही उपकरण है।
स्र्भार् की अनुभूतत स्र्ाभार्र्ई क है, अस्र्ाभार्र्ई क नहीं।

२१९. स्र्-भार् में क्स्ति होने ेका र्ई कल्प स्र्भार् पद का बािक है।

२२०. सिानजन्द्य अमनी भार् तनत्य नहीं र्रन् ्क्षणणक है ।

२२१. अस्र्ाभार्र्ई क र्ई कल्प, र्ई कल्प है और स्र्ाभार्र्ई क स्र्भार् है।

२२२. स्र्-भार् के भार्-अभार् का अभार् स्र्भार्र्ई क भार् है।

२२३. स्र्त्र् का स्र् और अक्स्तत्र् का भार् इसका ही नाम स्र्भार् है।

२२४. अक्स्त का जो अक्स्त है, भातत का भातत है, प्रर्य का प्रर्य है, और जो अक्स्त, भातत प्रर्य है, इन सभी भार्ों
के अभार् का नामः स्र्भार् है ।

२२५. आनंद नैततकजन्द्य हो अिर्ा अनैततक, क्षणणक, सिानापेक्षक्षत, कृबत्रम र्रृत्तजन्द्य, अतनत्य, र्ई षयानंद

२२६.

कहिाता है। और सतत आनंद, अकृबत्रम, सिान शून्र्य सामान्य, व्यापक, चेष्टारहहत, सदैर् सर् िको
प्राप्त सहजानंद कहिाता है । सोई स्र्रुप अिर्ा रुभार् है ।
भार् में भार्, अभार् में अभार् भार् का भार्, अभार् का अभार्, और भार् भी है अभार् भी है सोई
सहज भार् है।
२२७.
सहज क्स्तित सहजार्स्िा अिर्ा सहज समाधि है। सो चराचर की बबना प्रयास ही तनरंतर िगी रहती है।

२२८. योगी की समाधि मनोतनग्रह पर अर्िम्बत है। उसी में सर्कल्प तनर्विकल्प का र्कल्प है और
सहजानन्दी की समाधि सर्कल्प, तनर्कल्प, सबीज, तनबीज, संप्रज्ञात, असंप्रज्ञात इत्याहद के अभार्
२२९.
में स्र्तःमसद् है।

क्जसका कोई अर्िम्ब नहीं, क्जसके मिए कोई अर्िम्ब नहीं, क्रकसी का जो अर्िम्ब नहीं, प्राक्प्त,
अप्राक्प्त का र्कल्प रुप अर्िम्ब नहीं, ं सोई तनरािम्ब् पद है ।
रुभार् का धचन्द्तन स्र्ाभार्क रैकक्ल्पक नहीं।

२३०. अहं ब्रह्म का बिो तत्त्र्ममस महार्ाक्य के श्रर्ण, मनन, तनहदध्यासन का फि है और रुभार् का बिो
गुरुकृपा का फि है।
२३१.
रुभार् में स्र्ाभार्क तनष्ठा होती है अन्द्य में रैकक्ल्पक ।

२३२. भगर्ान का र्ास्तर्क और सतत स्मरण रुभार् का ही हो सकता अन्द्य का नहीं।

क्रकसी भी र्षय का अि िन भासना यही रुभार् क्स्तित है। मन की क्स्रिता चंचिता की उपेक्षा ही
२३३.
रुभार् क्स्तित है ।

२३४. र्ाह्य तिा अन्द्तजगित के क्रकसी भी र्षय के अनुभर् करने में मन की अपेक्षा नहीं ंहै।

२३५. पूजन, पाठ, ध्यान, िारणा ये सभी जीर्- देश के काय िहैं इसमिये इनमें मन का रोकना दुसुसाध्य है।

अन्द्तररक्ष यात्री बनो ।
२३६.
जो अंतररक्ष में रहता है र्ही अंतररक्ष की यात्रा कर सकता है।

२३७. आत्मतनष्ठा अंतररक्ष यान है। तनर्विकल्पता अन्द्तररक्ष है।

२३८.

२३९.

२४०.

२४१. सहजपद ही अन्द्तररक्ष पद है, सहजानंदी अन्द्तररक्ष यात्री है। अनुभूतत कैमरा है। अतनर्ाच्यता रेडडयो है, जहां ंपर 'में' के अततररक्त कुछ नहींयही धचत्र है।

सारा प्रपंच अंतररक्ष में है, अंतररक्ष क्स्ति अनुभर् करता है यही र्हा का संदेश है।

२४२.

मन, र्ाणी रुप पृरूथर्ी से परे कल्पनातीत पद, यही अनन्द्त योजन दूरूी है।

२४३.

प्रपंच के भार्, अभार् का र्ैकल्प स्र्णु पद की उपेक्षा है।

२४४.

र्हींिा, जहांिा, र्हींहूं, जहां हूं, र्हींरहूंगा, जहां रहूंगा ।

२४५.

िा, हूाँ, रहूंगा, इनके भार् के अभार् का नाम स्र्णु पद है ।

२४६.

जो हदखता है र्ह माया है, जो देखता है र्ह ब्रह्म है। हदखना, देखना दोनों भार् के र्ैकल्प का अभार्

२४७.

स्र्णु पद है ।

स्र्णु मानेस्र्णु, अस्र्णु मानेअस्र्णु दोनों र्ैकल्प के अभार् के मानेन स्र्णु न अस्र्णु, सोई अपना आप है।

त्याग मानेत्याग, ग्रहण मानेग्रहण, दोनों र्ैकल्प का अभार् ही सन्द्यास है।

समस्त चराचर रूपी गृह में क्स्ति आत्मा ही गृहस्ि है।

२४८.

र्ासना रूपी र्नता से दूरू सहजार्स्िा रूपी तप में आरूढ़ होना ही र्ानप्रस्ि है ।

मन की तृषूट्णा रूपी क्षिाक्ग्न को शान्द्त करनेके मिए कुछ भी धचंतंन न करना, ऐसा ब्रह्मधचंतंन रूपी

२४९.

चरना ही ब्रह्मचय िहै।

२५०.

चारों आश्रमों के भार् के अभार् पद में क्स्ति, सोई अर्ूित है।

२५१.

अन्द्तररक्ष की खोज में बुद्धि का व्यायाम है, अन्द्तररक्ष की खोजी में बुद्धि का र्श्राम है ।

२५२.

घास साहहत्य की उिझन में अक्ि की कसरत है। साहहत्य के श्रोत में साहहत्य से नफरत है।

गर हकीकत में आमशक हो तो तनर्र्किल्प क्रकिे के भीतर सहजानंदी शाही तख्त पर माशूक बैठा है, नकाबे आसमान चीरकर शर्क् माशूक् अंदर चिे जाओ ।

२५३.

२५४.

२५५.

२५६.

२५७. माशूकू की मुस्कराहर् आमशक को माशूकू बना देती है ।

२५८. आमशके माशूक हूं, एकतरफा मजा है, दीर्ाना हूं क्जसका, ई दीर्ाना है मेरा ।

२५९. नजरे माशूक आमशके र्तन खत्म कर देती है।

२६०. सच्ची ईमानदारी और शराफत इसी में है क्रक तुम कुछ भी न बनो क्योंक्रक कुछ बनना, दूसूरे मुल्क पर हमिा है।

काबबिे तारीफ है साकी, ऐसा पिर्िाया जाम, अपनेपराये का होश ही नहीं ं।

आत्मधचंतंन कहठन नहींहै, बक्ल्क "आत्म धचंतंन कहठन है" इस र्ंकल्प का अभार् होना कहठन है।

२६१. सरिता कहठनता का र्ंकल्प धचंतंनीय र्स्तु में होता है अधचन्द्त्य में नहीं ं।

२६२. प्रत्येक र्ंषय का अनुभर् करनेके मिए यहद मन उपकरण है तो सर् िका सर्िर्ा - में मन क्स्रि है। हा

२६३. यह भार् क्स्रि, नहीं ंअक्स्रि है ।

२६४. अतनर्चिनीय भगर्ान में तनराकार साकार का र्ंकल्प जीर् देश का है, भगर्ान देश का नहीं ं।

भगर्ान जगत का सृकृष्ट्र, पिान तिा संहार कतिा है, इस प्रकार का र्ंकल्प भगर्द्र्ंषयक मोह है।

र्ंश्र्ास न हो तो भगर्ान होकर देखो ।

मन के रोकने ेका प्रयास मन के रोकने में बािक है।

२६५. मन के रोकने ेका प्रयास मन के अक्स्तत्र् का पोषक है।

२६६. जीर् भार् में मन का अभार् यहद सत्य है तो सत्यभार् का अभार् होना भी सत्य है ।

२६७.

२६८.

२६९.

२७०.

२७१. मि,ि अि,ि काम, मोक्ष चारों र्ासन का अभार्, स्र्भार् के भार् में तनहहत है।

२७२. आत्मधचंतंन का र्ंकल्प, आत्मधचंतंन र्ंकल्प का आिार है।

२७३ मसद्धियों की मसद्धि, मसद्किति का पयायि है।

र्ंकल्पक में ही र्ंकल्प होता है, अन्द्य में नहीं।

२७४. र्कल्पक का ही पयायि र्कल्प है।

क्जसका र्कल्प होता है र्ही हदखता है।

२७५.

जो र्कल्प करता है र्ही हदखता है।

२७६.

र्कल्पक की हस्ती में र्कल्प की नेक्स्तहै। र्कल्पक की नेक्स्त में र्कल्प की हस्ती है।

२७७. मन का तनरिो, एकाग्र, क्स्र्ि और िय, मन के अक्स्तत्र् में तनहहत है ।

२७८. जहां ंअरे है र्हीं अर्क है।

जहां ंअर्क है र्हींखर्क है।

२७९.

जहां ंखर्क है र्हींभर्क है ।

२८०.

जहां ंभर्क है र्हींर्कि है।

२८१. यह संसार पतंग जैसी िूर् है, अंत में फर्ी णझल्र्ीि कै अततररक्त और कुछ न ममिेगा ।

हदखने ेर्िा नहींहदखता, देखनेर्िा हदखता है।

२८२.

देखने र्िे के देखने पर ही हदखने को हदखता है, अन्र्िा नहीं ।

२८३.

क्जसका र्कल्प होता है, र्ही हदखता है ।

२८४

जो र्कल्प करता है, र्ही हदखता है ।

२८५. प्रपंच का अत्यन्द्ताभार्, अमनी भार् में तनहहत है।

क्रकसी भी देश, कािा, र्स्तु की सत्ता मानना ही अध्यास है।

२८६.

अध्यास का त्याग ही ब्राह्मीतनष्ठा है।

२८७.

अभ्यास का आनंद चाहो तो, अभ्यास के अध्यास का त्याग करो ।

२८८. बाह्य अिर्ा अन्द्तजगित का जो चेष्ट्रा रहहत आनंद है, सोई सहजानंद है ।

२८९.

२९०.

२९१.

२९२.

२९३. अहाँ ब्रह्माक्स्म स्र्प्न की बंदूकू है। जीर्ा- ध्यास शेरे है ।

२९४. स्र्रूपस्ि होना जागृत् है ।

२९५. कातयक, र्ाधचक, मानमसक चेष्ट्रा की उपेक्षा स्र्भार्ानुभूतत है।

२९६. साहहत्य जगत में अनुभर् की उपेक्षा है। अनुभर् जगत में साहहत्य की उपेक्षा है और स्र्रूपस्ि जगत में दोनों की उपेक्षा है।

२९७. बुद्धि की चंचिता साहहत्य का र्ंस्तार है। बुद्धि की क्स्िरता अनुभर् का आिार है।

२९८. सत्–्उत्तम अधिकारी, अनुभर् चाहता है।

रज-मध्यम अधिकारी, सिान चाहता

२९९. तम-कतनष्ठ अधिकारी, साहहत्य चा है।

३००. बेर्कूफी क्रकसी खास की जागीर नहीं ंहै । यह दुतुनयां ंकैसी दुरुंगी है क्रक जो है उसको नहींदेखती है और जो नहीं ंहै उस है देखती है।

३०१. फ्री जमाने की कैसी खूबी है क्रक आजकिकी छोरी्-छोरी् कुंर्ारी िडक्रकयां ंभी ससुरिा का िक्चर देने में फ्ूिी नहींसमाती ।

३०२.

इसी प्रकार 'म'ैं आत्मा खसम से ख्र्ाब में भी मिुाकात नहीं और बाहरी दुतुनया में मसद्ि बिनकर र्ेदान्द्त किन करते है ।

याद रखो, क्जस समय तुम्हें दीद ('में' आत्मा) का दीदार होगा उस र्ख्त तुम्हारे हदि हदमाग हमेशा के मिए गायब हो जायेंगे । र्स, दीद ही दीद रह जायेगा ।

स्र्रूप र्ंस्मृतृत ही माया है।

३०३. अरे, का सदा के मिए अभार् ही आत्मा का सतत धचंतंन है ।

३०४. तनर्ंकिल्पता के मिए र्ंकल्प तनर्ंकिल्पता का बािक है।

३०५.

३०६. र्ंकल्प नाश के र्ंकल्प में र्ंकल्प का र्ंकास है।

३०७. आत्मकल्याण की भार्ना सिान के प्रमाद का नाशक है ।

३०८. सिान के प्रतत बेपरर्ाही प्रमादका स्र्रूप है।

३०९. मन की चंचिता और क्स्रिता का प्रभार् तनत्य है और यह तनत्यपना में आत्मा का है मन का नहीं ं।
चंचिता क्स्रिता दोनों भार्ों का अभार् ही स्र्रूप है (स्र्रूप क्स्तित)

३१०.

३११. म ैंको म ैंन जानकर म ैंको कुछ भी मान िेना ही मन है ।।

३१२. मन, प्राण, र्ासना इनका तनरीि न करना ही तनरीि का तनरीि है ।

३१३. चंचिता क्स्रिता दोनों र्कल्पों का जो अभार् है उसका नाम परमसमाधि है।

'म'ैं के अततररक्त कुछ नहीं यह परम समाधि का सिान है।

३१४. धचत्त के क्स्रि भार् चंचि भार् में हष िशोक न होना परम समाधि का स्र्रूप है।

३१५. धचत्त की समाधि पररक्च्छन्द्न है, परम समाधि व्यापक है। इसका तनश्चय करना ही स्र्भार् में हर्कना है।

३१६. इसका फि ब्राह्मीक्स्तित है और भगर्ान का सर्िकाि में भजन है ।

३१७. क्रकसी र्षय के अनुभर् के मिए उपकरण की आर्श्यकता नहींहै, उस र्षय को व्यक्त करने ेके मिए उपकरण की आर्श्यकता है ।

पदिा िका अनुभर् होता है अि िकी अमभव्यक्क्त होती है।

र्कल्प के बबना जो अनुभर् होता है, र्ो पदिा िहै।

३१८.

३१९.

३२०.

स्र्तु के अभार् का नाम र्कल्प है।

३२१.

म ैंको कुछ भी मान िेना मन है ।

३२२.

मनैं ेयह क्रकया, माया है ।

३२३. शरीर देश में शरीर ममर्थया है, आत्मा देश में शरीर असत्य है ।

३२४. हदखनेर्ािा भार्, देखनेर्ािा स्र् । हदखने र्ािी सीता देखने र्ािा राम ।

जो जगत को भी न जाने, न आत्मा को जाने, उसे र्कम िकहतेहैं ।

३२५.

३२६. म ैंदेखने की इच्छा करता हूं तो सृकूष्ट्र हो जाती है, । जब तक देखता रहता हूं ततब तक पिान है। जून देखना बंद कर देता हूँ हीं संहार है।

३२७. ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है, र्ज्ञान से प्रपंच (नाम, रूप) का नाश होता है। गुह्यतम से आर्ागमन के चि का नाश होता है ।

गुह्य-जो कान में इशारे से कहा जाय । गुह्यतर-बुद्धि से कहा जाय । गुह्यतम- बुद्धि से परे कहा जाय

३२८.

।

३२९.

अमानीपद र्िाक, न अपना अक्स्तत्र् मानता है, न संरक्षक का ।

३३०. क्जसको जो मसद् करता है, हींउसकी सरकार है।

३३१. म ैंके सिा हमेशा जानना िगाया जाता है। और (देह, जीर्, ब्रह्म) के सिा हमेशा मानना िगाया जाता है।

३३२. र्रक्त के मिए समाधि का अभ्यास अिर्ा प्रखर र्ैराग्य दोनों से जीन्र्मुक्क्त का िाभ है।

गृहस्ि में जीन्र्मुक्क्त का आनंद अपर्ाद है, मसद्िान्ि्त नहीं ।

३३३.

आत्मसमपणि का स्र्रूप, म ैंक्या हूं इस भार् का अभार् है ।

३३४. आत्मसमपणि करने ेके पश्चात कृपा का कोई प्रश्न ही नहींउठता ।

३३५. आत्मसमपणि का फि ही कृपास्र्रुप है। आत्मसमपणि सब गृहस्ि के मिए सुिभ नहीं ।

र्स्तुऔर उसके देने र्ािे के प्रतत जो आसक्क्त उसका नाम राग है। उपरोक्त के प्रतत घृणा का ही नाम

३३६. द्र्ेष है।

मन के आने ेजानेका अनुभर् करना पदिा िहै। भगर्ान है ।

३३७.

र्रकल्प करना िसि िहै, संसार है।

३३८.

'है' इस सम्रार् पद में क्स्ति होते ही ७र्ीं तुयंगा भूममका आ जाती है ।

३३९.

३४०.

३४१.

जाग्रत किा में स्र्प्न में यहद आस्िा है, तो र्स्तुतः र्ह स्र्प्न ही है।

३४२. अर्द्यमान स्र्तु यहद दृश्यमान है तो उसके सतत धचंतंन का पररणाम है।

बह्माध्यास के अभार् में शून्ूयर्ाद तनहहत है और शून्यर्ाद कृपा की उपेक्षा का पररणाम है।
३४३.

साक्षी भार् र्ाममाग िका श्रोत है, र्ाममार ज्ञान के प्रमाद का पररणाम है ।
३४४.
जीर् के गमनागमन का अभार् तिा कुछ में हूं, प्रमादी के मिए नाक्स्तकर्ाद का उपादान है ।

३४५. प्रमाद ज्ञान अमभमान की छाया है।

३४६. ज्ञान का सिाक सिानकिा में जो भी सिान करता है, उसके संस्कार बिो होने ेपर भी नहीं ंजाते ।

३४७. शून्ूय स्िान में बिाक को बेतिा (र्पसाच) भासता है, र्ैसे ही 'अह्मब्रह्मास्मी' के अभार् में प्रमादी को
शून्ूयर्ाद (क्षणणक र्ज्ञान- र्ाद) भासता है ।

३४८.

३४९. यहां ंकुछ है क्रक नहीं,ं इस र्कल्प का ही नाम स्याद्र्ाद (जैन मसद्ान्द्त है)।

३५०. भगर्ान जानता है इसमिए जाननेकी चीज है।

३५१. स्मरण का र्कल्प न करना ही सर्किा में स्मरण है।

३५२ चररत्र देखा जाता है, िािा सुनी जाती. है।

३५३. हदखने ेर्ाा चररत्र है, हदखनेर्ािे में र्कल्प होता है र्ह िािा है ।

३५४.

मशष्ट्यत्र् की प्राक्प्त नारायण भार् में तनहहत है। बिो होना सरि है परन्द्तु मशष्ट्यत्र् स्र्ीकार करना दुगुमि है।

गुरु ही मशष्ट्य रुप में हदखता है गुरु की सम्पूण िशक्क्त मशष्ट्य में प्रर्ष्ट्ट हो जाता है।
३५५.
धचत्त का सममािान मशष्ट्यत्र् भार् में तनहहत है।
३५६.
जो कुछ कहा जाय, र्ह 'म'ैं' नहीं ंहूूँ ।
३५७.
र्ही म ैंहूं, यही भगर्ान का गुणगान है, यही भगर्ान की महहमा है ।
३५८.

३५९. 'म'ै इसमिए जाननेकी चीज है क्योंक्रक सबको जानता है ।

३६०. 'म'ै को कुछ मानना यही भगर्ान पर किङ्क है।

३६१. 'म'ै को देह मानना देह का स्रुप ।
'म'ै को जीर् मानना – जीर् का स्रुप ।
'म'ै को ब्रह्म मानना – ब्रह्म का स्रुप ।

३६२. यह जगती है तिा उसके रुप की कल्पना करना यही जगत है ।

३६३. क्रकसी भी देश, किा, र्स्तु को अिहीन कर देने पर भगर्ान हो जाता है।

३६४. संसार में प्रत्येक काय िमें 'में' 'म'ै रहता हूँ इसमिए मन के आने ेजाने में हष िशोक नहीं होता और पूजन, पाठ, ध्यान, िारणा में जीर् हो जाता हूं इमसिए मन काबू से बाहर हो जाता है।
पुण्य, पाप और किता इन तीनों के अक्स्तत्र् का जो अभार् यही पुण्य पाप रहहत कमों का भार् है।
२६५.
कमों का अि िही पुण्य, पाप है।
२६६.
अपनेआपको कुछ भी मानना ही मन की उत्पर्त्त है।
३६७.
मन को रोकनेमें चंचिता तनहहत है और न रोकनेमें क्स्िरता तनहहत है ।
३६८.
मन को रोकनेमें जीर् भार् तनहहत है और न रोकने में 'म'ै भार् तनहहत है।
३६९.
जो न होय और हदखाई पडे ेयही भगर्ान का चररत्र है और न होतेहुए जो हदखाई पडता है यह भगर्ान
३७०. की िीिा है।
धचत्त कहता है क्रक म ैंधचत्त हूं इसमिए म ैंधचत्त हूं ।

'म'ै से मभन्द्न अगर धचत्त है तो धचत्त नहीं

ििकि िोकान्द्तरों का गमनागमन भार्ना पर अर्िक्म्बत है ।

३७१. जानने ेके मिए 'में' और हर्कने के मिए 'है'।

३७२. चराचर प्रजा है। 'है' गर्नमिेन्द्र् है और 'म'ै प्रिानमंत्री है।

३७३.

३७४.

३७५.

३७६. दूसूरे का भोग र्ही भोग सकता है क्जसको दृक्ष्ट्र में दूसूरा नहींहै।

३७७. अध्यास असत्य है उसका र्कल्प ममर्थया है।

३७८. सर् िस्ानि से सर् िको जानना, इसका नाम ज्ञान है और एक स्ानि से सर् िको जानना, इसका नाम योग है।

३७९. नहीं ंहोकर जो हदखता है, र्ह माया है और हदखने र्ािे को जो देखता है र्ह 'म'ैं हूं।

३८०. एक रस क्स्तित नहीं ंरहती इस र्कल्प के अभार् का ही नाम एक रस क्स्तित है और इसी क्स्तित को स्राभार्क क्स्तित कहतेहैं ।

३८१. अस्राभार्क क्स्तित या कृबत्रम क्स्तित धचत्त की होती है और स्राभार्क क्स्तित आत्मा की होती है।

३८२. भार् के अभार् में भासता स्भार् है।

३८३. कृबत्रम क्स्तित योग का फि है । स्राभार्क क्स्तित ज्ञान का फि है।

३८४. म ैंब्रह्म हूं, यह ज्ञान है। इस अध्यास के अभार् का जो भार् है उसका नाम भक्क्त है।

३८५. म ैंहूं, इस भार् में मन तुम्हारे र्श में हो जाता है और में जीर् हूाँ इस भार् में मन के र्श में तुम हो जाते हो ।

३८६. र्कल्प रहहत कम िको पुण्य, पाप रहहत कम िकहते हैं।

३८७. 'म'ैं को कुछ भी मान िेना यही किई है और 'म'ैं को 'म'ैं ही जानना यही कदर है।

३८८. अपनेआप 'म'ैं' को कुछ भी मानना आत्म र्षयक मोह है और यही आत्मा पर किंक िगाना है।

३८९. र्ह 'म'ैं हूं, इस र्कल्प के अभार् का नाम तनत्ययुक्त है।

३९०. अि िरहहत जो कम िहोतेहैं उन कमों का नाम पुण्य-पाप रहहत कम िहै।

३९१. म'ैं को कुछ भी मानना ही आत्मतनष्ठ्ठ का प्रमाद है ।

३९२. संसार का र्कल्प ही संसार की मजबूत जड है।

३९३. संसार के प्रत्येक र्ष्य के अनुभर्का में जैसा में हूं, र्हा रहता हूं।

३९४. में पहिे जीर् िा, अब ब्रह्म हुआ, यह ज्ञान अज्ञान है और न में पहिे जीर् िा, न अब ब्रह्म हुआ, यह भगर्ान का ज्ञान है।

३९५. 'म'ैं हूँ ऐसा जानना ही 'म'ैं का जानना है ।

नाम का अि,ि रुप का र्कल्प यही संसार है ।

३९६. आत्मा का अि िअक्स्तत्र् और परमात्मा का अि िअमभन्द्न ।

३९७. मन रोकनेसे नहीं ंरुकता, न रोकनेसे रुकता है।

३९८. मन को क्स्िर करना है तो मत रोको, मन को चंचि करना है तो रोको ।

पदा िभगर्ान है, अि िसंसार है।

३९९. अि िसे भय है, पदां ंसे नहीं।

४००. मन अि िमें जाता है, पदा िमें नहीं ं।

४०१. साहहत्य उसे कहतेहै जो याद करके भूि जाय ।।

४०२. र्ेदान्द्त उसे कहतेहै क्जसे सुनकर डूब जाय ।

४०३. हठयोग से प्राण का तनरिे, राजयोग से मन का तनरिे, ज्ञान योग से र्ासना का तनरिे, भक्क्तयोग से तनरिे का तनरिे ।

४०४. मन का प्रेम ब्रह्म से है, न क्रक र्ष्य से क्योंक्रक दोनों एक ही नपुंसकमिंग है। ब्रह्म के समान मन भी अक्रिय है। मन में जो क्रियाशीिता भासती है, यह मन का स्र्भार् है ।

४०५. क्रिया काल्पतनक होती है, स्र्भार् र्ास्तर्क होता है।

न मन चंचि है, न क्स्िर है। चंचिता का र्कल्प चंचिता है, क्स्िरता का र्कल्प क्स्िरता है।

४०६. तनभीकता त्याग में तनहहत है।

४०७. मन द्र्ारा रधचत भगर्ान का भजन मन की एकाग्रता पर तनभरि है ।

४०८.

४०९.

४१०.

४११. मन से परे जो भगर्ान उसके भजन के मिए एकाग्रता की अपेक्षा नहीं है।

४१२. जब 'म'ैं कुछ बनता हूं, तब मन बनता है। जब 'म'ैं कुछ नहीं ंबनता तब मन भी नही बनता। अतः कुछ भी न बनो।

अमानी रहना ही परम समाधि है। यही सहजार्स्ािऔर भगर्ान से सहज स्नेह है।

४१३. स्िूिदृक्ष्ट्र्ािों के मिए क्जस प्रकार स्िूिजगत बिाक है उसी प्रकार सूक्ष्म दृक्ष्ट्र्ािों के मिए आकाश बिाक

४१४.

है।

४१५.

४१६. तनगुणि, सगुण का भेद ममर् जाने पर ही भगर्ान में सहज सनेह होता है।

४१७. जो है र्ह राम है, जो नहीं है र्ह चररत है। जो न होतेहुुए भासता है र्हीं िीिा है।

४१८. म ैंक्या हूं इसको भ्िूा है, म ैंहूं इसको नहीं भ्िूा है।

४१९. बेक्रफिी का अभ्यास करो।

४२०. मन भगर्ान आत्मा का संकल्प है, इसे जीर् भार् में कैसे रोक सकते हो। आत्मा भार् में ही क्स्रि होता है।

आत्मभार् में प्राणणमात्र क्स्ति है। अपने आप को कुछ मानतेही आत्मभार् से पतन हो जाता है। कोई क्रकसी भी क्षेत्र में प्रगतत करता है तो आत्मभार् में ही करता है।

जब क्रकसी का पतन होता है तो कुछ बनने पर ही होता है। अत: कुछ न बनों।

पुर को अप्रतीतत ही पुरुष का बिो है।

४२१. पुरुष का बिो ही अक्स्तत्र् में हर्कना है अक्स्तत्र् में हर्कने का र्ेकल्पा भार् ही अक्स्तत्र् की अनुभूतत है।

४२२. अनाहद के अक्स्तत्र् में प्रपंचं का अजातर्ाद तनहहत है।

४२३. चररत्र के अक्स्तत्र् में ही चररत्रभ्रम तनहहत है।

४२४. अपने में को कुछ न मानना ही प्रमाद से रक्षा है।

४२५. सारा संसार प्राणणमात्र जड, चेतन सहजार्स्ािमें क्स्ति है, इस क्स्तित में, इस तनश्चय में, इस बिो में तनरन्द्तर

४२६. ही कृपा का स्र्रूप है।

४२७. जो है र्ह राम है, जो नहीं है र्ही सीता

रहना

४२८.

४२९. स्राभार्क मन एकाग्र होने पर नारायण भार् रहता है और कृबत्रम सिान द्रारा मन एकाग्र होनेसे जीर्भार् रहता है।

काल्पतनक अभ्यास में न बैठेकर स्राभार्क अभ्यास में बैठो ।

४३०.

विकेषण से बचो । यह र्ंकार धचताओंका घर एर्ं सन्द्माग िका बिाक है।

४३१

स्रूपस्ि पुरुष का कुछ मी न करन। हो सब कुछ करना है।

४३२.

देह के अक्स्तत्र् में प्रारब्ि का अक्स्तत्र् है। प्रारब्ि कम िमानने तक अज्ञान का अक्स्तत्र् है।

४३३.

प्रपंच दृक्ष्ट्र सेप्रपंच का अक्स्तत्र् है, आत्मदाष्ट्रि से प्रपंचं का अक्स्तत्र् नहीं ।

४३४.

संधचत, प्रारब्ि, क्रियमाण कम िही नहीं, न इनका नाश कभी हुया. इस प्रकार के अनुभर् का ही नाम समस्त

४३५.

कमों का नाश है।

अज्ञानी को ज्ञानोपदेश करना मशक्षा नहीं ंबक्ल्क सनातन ब्रह्म की स्तुतत है।

क्जसको संसार कहते ेहैं, र्ह 'म' ैं ही तो हैं। क्जसको म ैंकहते ेहैं र्ह म ैंही तो हूं। इस भार् का नाम अतनर्ाच्यि पद है ।

रखो क्या जो रखा न जा सके, देखो क्या जो देखा न जा सके ।

४३६.

मन को न रोकना ही मन को रोकने का सिान है ।

४३७.

मन को मन न मानना ही मन की क्स्रिता का सिान है ।

मन की याद न करना ही मन के तनरोि का सिान है।

४३८ स्रूरूप में क्स्ित हो जाना ही मन के िय का सिान है।

४३९ र्ंधि र्ाक्य और तनषेि र्ाक्य दोनों के अभार् का जो भार् है, र्ही स्रूप क्स्तित है। तनषेि र्ाक्य प्रपंचाध्यास का

४४०. नाशक है और र्ंधि र्ाक्य प्रपंच के अक्स्तत्र् का नाशक है। र्ंधि-तनषेि दोनों र्ाक्यों का अभार् र्ंधि-तनषेि का नाशक है ।

४४१.

मन सिान में क्स्रि नहीं होता, साध्य में होता है।

४४२.

मन, र्चन के द्रारा क्जतने कम िहोते हैं, र्े सिान है। इनका फि साध्य है। सिान काल्पतनक होता है, साध्य

४४३.

र्ास्तर्क होता है।

समस्त सिानों की पररसमाक्प्त जहांहोती है र्ही स्रूप आत्मानंद है ।

४४४.

४४५.

४४६.

४४७. यह मन क्षणणक आनंद में तनरिो और एकाग्र होता है, तनत्यानंद में क्स्रि और िय होता है।

४४८. क्जस ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है उसे कृबत्रम, र्शेष, सिान जन्द्य अिरा क्षणणक ज्ञान, अतनत्य ज्ञान कहते ेहै।
क्जस ज्ञान से अज्ञान का ज्ञान होता है, उस ज्ञान को स्राभार्क, अकृबत्रम, रास्तर्क, सामान्द्य व्यापक अिरा तनत्यज्ञान करते ेहैं।

स्राभार्क संकल्प स्र्भार् है, अस्राभार्क संकल्प संकल्प है।

४४९. अस्राभार्क संकल्प से क्जति होना है, स्राभार्क संकल्प से नहीं । स्राभार्क संकल्प तनःसंकल्प है।

४५० अस्राभार्क संकल्प संकल्प है। यही काम संकल्प है।

४५१. स्राभार्क कम िअकम िहै, अस्राभार्क कम िकम िहै।

४५२ भगरान का स्मरण मन से नहीं ंहोता ।

४५३. र्क्षेप रोकने का अभ्यास न करो, र्क्षेप न रोकने का अभ्यास करो ।

४५४. र्क्षेप है, इसका अभ्यास न करो, र्क्षेप है ही नहीं, इसका अभ्यास करो।

४५५. मन और बुद्धि के तरफ जो नहीं देखता र्ही भगरान है।

४५६. शब्दाहद र्षयों के अनुभर्कािमें स्राभार्क अनुभर् का अनुभर् इसमिये नहीं ंहोता क्रक उस अर्स्रा में आत्मभार् रहता है।

४५७. आत्मदेश में अनुभर् की चीज, अनुभर्- कतिा, अनुमूतत तीनों नहीं रहते े। उस अर्त्रा में मन नहीं रहता ।

बन बना कर बैठैना धचत्त का धचतन है। न बन बनाकर बैठैना धचत का धचंतंन है।

४५८.

४५९.

४६०.

४६१. अहंकार युक्त जो कम िक्रकया जाता है, उसी की स्मृतृत रहती है।

४६२. बबना बिो के कम,ि उपासना करना राख में आहुतत डािना है।

४६३. बहहरंग जगत में उसी र्षय की स्मृतृत होती है क्जस र्षय का अक्स्तत्र् हृदय में में होता है।

४६४. कतृत्रािमभमान ही योग माया है। अपने को कुछ भी मानना यही भगरान को योगमाया से आर्ृतृ करना है ।

४६५. स्रूपस्िभार् में अनुभर् के भार्, अभार् का भी अभार् है।

स्र्भार् में आकाश तत्र् स्र्भार् का र्र्त िहै।

४६६. आत्मदेश से अपने को पूण िमानो, व्यर्हाररक दृक्ष्ट् से अपने को हमेशा अपूण िमानो । जहां भी गुण ममिे ग्रहण करो।

४६७. व्यक्क्तत्र् की उपेक्षा व्यक्क्तत्र् के गुरुपने की कंदरा है।

र्ऍधि-तनषि का अभार् सर्किा का शकुन है।

४६८.

स्र्भार्स्र् होना ही र्ऍधि-तनशि का अभार् है ।

४६९.

स्र्ाभार्र्क संकंल्प स्र्भार् स्र्रुप होने से सत्य होता है ।

४७०.

४७१.

४७२. व्यक्क्तत्र् की रक्षा में कत्तव्र्यि पिान नहीं होता ।

४७३. कतव्र्यि पिान में र्ऍश्राम नहीं ंहोता ।

व्यक्क्तत्र् रक्षा की अपेक्षा कतव्र्यि पिान महान है।

४७४.

कत्तव्र्यि का पिान व्यक्क्तत्र् का रक्षक है।

४७५.

मन, र्चन, कम िइन तीनों से अर्ऍि काय िव्यक्क्त का कत्तव्र्यि है ।

४७६. कतव्र्यि पिान की उपेक्षा मानर्ता का पतन है।

मानमसक कमजोरी का मनोर्ऍज्ञातनक र्ातनक आत्मज्ञान है।

४७७.

र्ऍद्र्ान साहहत्य समझता है, श्रद्र्ाि आत्मा समझता है।

४७८.

मन का प्र्ेरक कौन? अपने आपको जो कुछ नही मानता ।

४७९.

अज्ञानी का र्ेदान्द्त अनेकता को िकर है, ज्ञानी का भगर्ान को िकर है।

४८०. सार्भौम मसद्र्ांत में अद्र्ैत का भी अभार् है। इस रहस्य को र्ही समझेगा क्जसने समझा है।

इस रहस्य को र्ही समझेगा, जो सबकी समझ है।

४८१.

जो सबकी समझ है, उसी ने समझा है क्जसनेसमझा है र्ही समझेगा ।

४८२.

स्र्भार्स्र् पुरुष का र्ऍक्षेप भी स्र्भार् है।

४८३. आत्मधचंतंन स्र्भार् नहीं ंहै, परभार् है। इसमिए र्ऍक्षप से र्ऍक्षेप होता है ।

४८४.

४८५.

४८६.

स्र्रूप र्ऍस्मृतत ही माया है।

४८७. अरे। का सदा के मिए अभार् ही आत्मा का सतत धचंतंन है।

तनर्ईकिल्पता के मिए र्ईकल्प तनर्ईकिल्पता का रि्ाक है।

४८८.

र्ईकल्प नाश के र्ईकल्प में र्ईकल्प का र्ईकास है।

४८९.

प्रश्न- मन चंचि है भजन नहीं होता।

४९०. उत्तर- भजन से और मन की चंचिता से क्या संबंध है। भजन अपनी जगह है चंचिता अपनी जगह है।

राग-द्रेष रहहत जो हृदय है र्ही र्ईक्त है।

जो भगर्ान का भजन करता है र्ह ज्ञानी क्जसका भजन भगर्ान करता है र्ह भर्त।

४९१.

क्स्तित और अक्स्ति दोनों की उपेक्षा करना एकरस क्स्तित का परम सिान है

४९२.

४९३.

४९४. ज्ञानी देखने रि्ी में र्ईचरता है, अज्ञानी हदखनेर्िी में र्ईचरता है। जो समझता हूं,कहता है, र्ह कुछ नहीं समझा,
जो कहता है कुछ नहीं समझा, र्ही समझा है।
नहीं को देखना चाहो तो दूरू से देखो, है को देखना चाहो तो नजदीक से देखो।

४९५.

तुम्हें यहद बोि हुआ है तो तुम्हारे पास कुछ है नहीं क्जसेतुम दो यहद देने की इच्छा कर रहे हो तो अभी बोि नहीं

४९६. हुआ।

र्ेदान्द्त र्ास्तर्र्क भेद का र्िर्ी है, काल्पतनक भेद का नहीं। जहां ंजानहै र्ही ंखडा है, क्जसको देखना है उसे
ही देख रहा है।

४९७.

तनरिी र्ईचार से, एकाग्रता धचतन से,क्स्रिता अनुभर् से, िय समाधि से।

४९८.

सत्य भगर्ान सीमा रहहत इतना नजदीक है क्रक में हूं। असत्य संसार सीमा रहहत इतनी दूरू है क्रक तीनकाि में है ही
नहीं।

४९९.

पूजन, पाठ, ध्यान िारणा में बबना सिान के स्र्ाभार्र्क मन को क्स्रि करना चाहो तो पूजन, पाठ, को पंचं र्ईषयो

५००. से मभन्द्न मत जानो।

सहज समाधि के अततररक्त प्रत्येक समाधि काल्पतनक कृबत्रम और क्षणणक है।

५०१.

संसार के समस्त र्ईषयों का अनुभर् बबना प्रयास स्र्ाभार्र्क सहज समाधि में तनत्य होता है।

५०२. स्र्रुप क्स्तित ही सहज समाधि है।

५०३.

५०४. क्रकचचन्द्मात्र भी चेष्ट्ा न करना ही स्र्रूप क्स्तित है। चेष्ट्ा की कल्पना का नाम ही चेष्ट्ा है और कल्पना ही

कल्पना

है। स्र्तुतः स्र्रूप है। ऐसी क्स्तित का नाम आत्मा में मन का प्रर्ेश है।

म ैंको जानना है ऐसी कल्पना का नाम म ैंका अज्ञान है और इस कल्पना के नाश का नाम 'म'ैं का ज्ञान है।

५०५.

सहजार्स्र्ा में कत्तृत्र्ामभमान नहीं रहता स्र्ाभार्क अज्ञानकिा से भी बढ़कर काय,ि संकंल्प देखना, सुनना होता

५०६.

है। अमभमान रहहत काय िकरनेमें िकार्् नहीं ंआती।

संसार में रोग एक है-जगत को सत्य मानना और दर्ा भी एक है- परमात्मा को सत्य मानकर हर्क जाना ।

भगर्ान और गुरु को अपना मन ही देना चाहहये क्योंक्रक मन के मसर्ाय अपना कुछ है भी नहीं, ं स्त्री पुत्राहद अपने

५०७.

नहीं है। अपने आप में जो अनेक नाम रूपात्मक जगत हदखाई देता है, र्ही र्र्ाट् ब्रह्म है।

५०८. अपने से मभन्द्न जगत को न देखना, यही र्र्ार् बह्म का दशनि है ।

प्राच्य र्ेदान्द्त क्रकसी का खंडन नहीं करता ।

नव्य र्ेदान्द्त शुष्क होता है, केर्ि र्ाधचक ज्ञान है, सबका खंडन करता है।

५०९.

र्ई्द्ान समाज में र्ई्द्त्ता का महत्र् है, संत समाज में आत्मानुभर् का महत्र् है।

५१०.

बिो होने पर अपने नर्ये हुए भीतर के संसार का नाश होता है, बाहर का नहीं।

५११.

मन जीतने की चीज नहीं ंहै, मन के जीतने के र्ंकल्प के पीछे शत्रुता खडी है। जब मन को शत्रु ुमानतेहो तभी

५१२.

जीतनेका प्रश्न होता है ।

५१३. मन से मिे करा । मिे करनेका क्या स्र्रूप है- अपने आपसे मन को अिग न मानना । जब मन भगर्ान से

अिग नहीं ंहै तो जीतोगे क्रकसको ।

५१४.

ब्राह्मीतनष्ठा का स्र्रूप ऐसा नहीं-खाने पीने ऐशो आराम में तो -म'ैं बह्म हूं और संकंर्कि में 'म'ैं जीर् हूं। चाहे

इन्द्रासन में बैठो तब में ब्रह्म हूं, चाहे र्ंपर्त्त का पहाड स्र्ूर्े तर् भी म ैंब्रह्म हूं।

भगर्ान को अपना मन देना चाहहए और गुरू को अपने आपको देना चाहहए। मशष्य ने अपने आपको जब दे हदया

तो जीर्भार् गया। गुरु ने अपने आपको मशष्य को दे हदया तो ब्रह्म भार् गया, रहा एक चेतन का चेतन ।

५१५. यहद तुम जीर्-ब्रह्म, ईश्र्र-जगत को दो मानकर संतुष्ट् हो, तुम्हारा धचत्त संतुष्ट् है तो मानो, कोई आपर्त्त नहीं।

भीतर िुकिकाहर् है तो तुम्हारा जीर्- ब्रह्म, ईश्र्र-जगत दो मानना पाखंड है।

५१६.

५१७.

५१८.

यहद

५९९. नाम से सिोक्य मुक्त. रूप से सारुप्य मुक्त, गुण से सामीप्य मुक्त, ध्यान से सायुज्य मुक्त और ज्ञान से सद्योमुक्त ममिती है ।

५२०. र्ास्तर्र्क मशक्षा का आदश ियह है क्रक हम अन्द्र से क्रकतनी र्द्या बाहर तनकाि सकते हैं, यह नहीं क्रक बाहर से अंदर क्रकतनी डाि चुके हैं ।

५२१. क्रकसी भी र्ंषय के अनुभर्काि में मन रहता ही नहीं। यहद संसार के अनुभर्- काि में मन रहेगा तो उसी तरह अडचन होगी, क्जस तरह पूजा, पाठ के समय होती है।

५२२. तनरािी, एकाग्रता, िय जीर्भार् में होता है। क्स्रिता आत्मभार् में होता है. जीर्- भार् में नहीं जो प्राणणमात्र का हमेशा है ही।

५२३. सारा चराचर र्ना प्रयास के ही समा- धिस्ि है, यह अनुभर्, में र्ना प्रयास के समाधिस्ि हूं इसमें तनहहत है। त्रयमेकत्र

५२४. संयंमः- ध्यान, िारणा, समाधि। क्रकसी पर संयम करने से तरुपुता आ जाती है। क्रफर र्ही बोिता है। कृष्ण क्स्तित में (अपने आप में) क्स्ित हो जाओ, गीता तनकािनेगेगी ।

५२५. आत्मा उसे कहते ेहैं जो क्रकसी सेदूरू न हो, क्जससे कोई और प्रेय न हो ।

५२६. भगर्ान का सार्िकीन स्मरण र्ही है जो मन के भार् में भी हो और ही अभार् में भी हो। जब मन का स्र्भार् ही चंचिता है तब (तनग्रहः क्रकं कररष्ष्यतत)

५२७.

५३३.

५२८.

५२९. व्यक्क्तगत खुदी, सार्भौम खुदा ।

५३०.

शरोर स्र्प्न है और शरीर पर जो र्ंकल्प यही स्र्प्नान्द्तर है ।

५३१.

कारण से हो, र्ह र्ंकार है । बबना कारण से जो हो र्ह स्र्भार् है।

५३२.

चंचित्र्, क्स्रित्र् मन का स्र्भार् है। चंचित्र्, क्स्रित्र् से होने र्ािी कल्पना का नाम र्ंकार है।

५३३. मोक्षेच्छा भी र्ंकार है। सगुणोपासक मोक्ष, न िेही ।

५३४.

यह आकाश है ऐसी कल्पना का नाम दाग है अिर्ा िूममि होना है।

५३५. (म ैंअरू मोरर तोरर ते माया) में ऊपर का ढक्कन, मेरा नीचे ेका ढक्कन चेतन का का जोड योगमाया । जो कहता है म ैंदेह, मेरा देह र्ही जीर् है। उसी समय जीर् हो जाता है।

शरीर स्र्प्न है और शरीर पर जो र्ंकल्प यही स्र्प्नान्द्तर है ाा

जो हदख रहा है र्ह र्द्या है, इसमें जो र्ंकल्प होता है र्ह अर्द्या है जैसे- रज्जू र्द्या है, सप िअर्द्या है ।

ग्रह, कम,ि काि इत्याहद के इष्ट्र, अतनष्ट्र फि का अक्स्तत्र् देहात्मभार् में तनहहत है।

५३६. अिहीन पदा िअतनर्चिनीय होता है।

अतनर्चिनीय ही भगर्ान होता है।

५३७.

सर्किा में भगर्ान का स्मरण 'स्' भार् में ही होता है, पर भार् में नहीं ।

५३८.

'म'ै को कुछ भी मान िना ही मन का स्रूप है।

५३९.

५४०. धचत्त का समािान ही मशष्ट्यत्र् भार् का प्रतीक है।

५४१.

आत्मबोि का फि ही धचत्त का समािान है।

५४२.

पदा िका अनुभर् होता है, जि िकी अमभव्यक्क्त होती है ।

५४३. जगत का आिार ब्रह्म अजात है इसमिये जगत भी अजात है। भगर्ान से मोक्ष की भी याचना न करना, भगर्ान की यही तनष्ट्काम सेर्ा है ।

५४४.

५४५.

प्रारब्ि का अक्स्तत्र् ममर्थया देश में है, असत्य देश में नहीं ।

५४६.

क्जसके पास भगर्ान के मसर्ाय कुछ भी नहीं, र्ही सािु है।

५४७.

भगर्ान का हदव्य स्रूप भगर्ान के काय िकरने का उपकरण है। उसी को सगुण ब्रह्म कहते ेहैं।

५४८. जो हदव्य शरीर िारण करता है, उसे व्यापक ब्रह्म र्आ्त्मा 'में' कहते ेहै ।

सगुण ब्रह्म को प्रगर् करने के मिये केर्ि रोना ही सािन है और व्यापक ब्रम्ह 'म'ै को जाननेके मिये संत शरण ही

५४९. सािन है।

यह देह है-इस र्ंकल्प का नाम देहाध्यास है। 'में देह हूं' इसका नाम देहामभमान है।

५५०.

देहामभमान, देहाध्यास में तनहहत ।

५५१. देहाध्यास, अज्ञान में तनहहत है ।

५५२.

शरीर है, इस र्ंकल्प का ही नाम शरीर है। शरीर है, इस र्ंकल्प की उत्पत्त्त ही शरीर की उत्पत्त्त है और इसका नाश ही शरीर का नाश है।

जैसा है र्ैसा ही देखना। यह अमुक है, ऐसा मत देखना ।

५५३.

अज्ञानी की मुक्क्त बंिन से होती है और ज्ञानी की मुक्क्त, मुक्क्त से होती है।

५५४.

५५५. अज्ञानी की मक्त्त अज्ञान से होती है और ज्ञानी की मुक्त्त ज्ञान से होती है।

५५६. प्रपंची का संन्ंद्यास प्रपंच से होता है और सन्द्यासी का सन्द्यास सन्द्यास से होता है।

५५७. जो जानता है, र्ह नहीं भर्कता, जो मानता है र्ह भर्कता है ।

५५८. म ैंजैसा हूाँ, र्ैसा ही हूं, यही जानना है और म ैंअमुक हूं- यही मानना है।

५५९. भगर्ान कैसा है ? जैसा 'मै' ैं हूाँ ।

'म' ैं कैसा हूं ? जैसा भगर्ान है।

५६०.

५६१.

५६२. मन की दौड र्ास्तर्र्क (ईश्र्र जगत) में नहीं है, र्ैकक्ल्पक जगत (जीर् जगत) में है।

५६३. बबना र्ंकल्प के जो हदखाई पडे ेर्ह ईश्र्र जगत है और र्ंकल्प से जो हदखाई पडे ेर्ह जीर् जगत है।

५६४. ईश्र्र जगत एक होता है, जीर् जगत अनेक होता है।

मानी हुई चीज भ्रूिती है, जानी हुई नही।

५६५.

ज्ञान दो प्रकार का एक माना हुआ ज्ञान, एक जाना हुआ ज्ञान । म ैंअमुक हूं, यह माना हुआ ज्ञान है। म ैं हूं, यह जाना हुआ ज्ञान है।

५६६.

तमोगुणी मन में अपना स्र्रूप ३।। हाि का हदखता है, रजोगुणी मन में अपना स्र्रूप अंश और अनेक हदखता है, सतोगुणी मन में अपना स्र्रूप व्यापक और ब्रह्म रूप हदखता है, बत्रगुणात्मक मन के अभार् में जैसा है र्ैसा ही हदखता है।

अपने आप 'मे' को कुछ भी मानना ही भगर्ान के जाननेमें कहठनाई है।

म ैंहूं, भगर्ान है। म ैंअमुक हूं, यही माया है।

५६७. मन, र्चन, कम िद्र्ारा नैततक अनैततक क्जतने भी काय िक्रकये जाते ेहैं र्े सभी सािन है और क्जसके मिये क्रकये जाते हैं र्ही जीर्न का िक्ष्य है।

५६८.

५६९.

५७०. कमों के कत्तापिनेका अहंकार ही कमों का स्र्रूप है।

५७१. म ैंब्रह्म हूं इस भार् में हदखने र्ािा शरीर है और म ैंहूं इस भार् में मानने र्ािा शरीर है।

र्ंकल्प जगत में मानना है, आत्मजगत में जानना है ।

५७२.

५७३. मन हदखने र्िे में नहीं जाता, यह अमुकु हदख रहा है-इसमें जाता है।

५७४. म ैंजीर् हूं, इस भार् में पुण्य पाप दोनों कमों का अक्स्तत्र् है, में हूं, इस भार् में नहीं ंहै- तब पुण्य पाप कहां ं।

५७५. मानी हुुई चीज मरती है, जानी हुुई चीज नहीं ंमरती।

५७६. जो जैसा है उसको र्ैसा ही देखना मन र्ाणी से परे भगर्ान को देखना है। यह अमुकु है ऐसा देखना, मन र्ाणी का र्षय माया को देखना है।

मानना मभन्द्नता में है, जानना अमभन्द्नता में है। मानना ही मभन्द्नता है, जानना ही अमभन्द्नता है।

हदखनेर्िे से आंख मत मूंदों। यह अमुकु है- इससे आंख मूंदों।

५७७.

भगर्ान को भगर्ान क्यों कहते ेहैं, इसमिये क्रक भगत्रान अपने 'म'ैं को कुछ नहीं ंमानते े। यहां ंतक क्रक म ैंभगर्ान

५७८.

हूं यह भी नहीं ंमानते, उपासक भगर्ान को भगर्ान मानते ेहैं।

५७९. अपने को पुरुष नहीं मानतेइसमिए कामदेर् के बाण मंनि करने में समि िनहीं हुुए।

जगत उत्पत्त्त की कल्पना अमुक में तनहहत है।

यह अमुकु है ऐसा मानकर देखने-हदखने की कल्पना होती है।

५८०.

देखना-हदखना भी अमुकु में ही तनहहत है।

५८१.

मानना ही मन है। न मानना ही आत्मा में मन का िय है।

५८२.

रूहानी क्जदगी को हमेशा क्जन्द्दा रखने के मिए फॉसी के तख्तेपर िर्कनेको तैयैार रहो।

५८३.

५८४.

५८५.

५८६. र्क्षक्षप्त साम्राज्य में आध्याक्त्मक जीर्न नागररक नहीं ंबन सकता।

५८७. हेय जानकर राग-द्रेष का दूरू-ततदुरु अमभर्ादन जय पराजय पर र्जय हैं।

५८८.

तनभयिता का सन्द्धान भगर्ान का सन्द्धानः है।

५८९.

अध्यात्म जगत का नागररक अजातशत्रु ुहोता है।

५९०.

आपत्त्तजगत परीक्षा स्र्िहै, कारण परीक्षक है, आत्म र्श्र्ास परीक्षा र्षय है, अडडग रहना ही उत्तीणिता है।

५९१.

आत्म र्श्र्ास की परीक्षा के मिए सदैर् आपत्त्त का आर्ाहन कल्पनातीत शूरता है।

५९२.

आध्याक्त्मक जगत का राही िकान का अनुभर् नहीं करता।

५९३. रागद्र्यात्मक तत्र्ों का प्रततर्ाद एर्ं प्रततकार न करना ही भगर्ान मशष्ठ का ब्रह्मास्त्र है।

९९४. ब्रह्मर्द्या का उपासक मन, र्चन, कम ितीनों से अयाचक होता है।

स्र्ाहीन हृदय की शक्क्त अक्षुण्य होती है।

५९५.

यह खुदा का किाम है,

५९६. फकीरों का पैगाम है

मस्तों का हदी जाम है,

क्जन्दगी का पररणाम है।

दुतुनयां, दुतुनया ढूंढ़ती है। भगर्ान संत ढूंढ़ते ेहैं।

दुतुनया, दुतुनयां ंके पीछे चिती है, भगर्ान संत के पीछे चितेहैं।

५९७.

५९८.

५९९. दुतुनया के मिए दुतुनयां प्रमाण है, भगर्ान के मिए संत प्रमाण है।

६००.

दुतुनया सन्म्मान का स्र्ागत करती है, संत अपमान का स्र्ागत करते हैं।

६०१.

दुतुनया के मिए दुतुनया ई्श्र्र है, संत के मिए भगर्ान ही ई्श्र्र है।

६०२. दुतुनयााँ, क्रकसी से राग और क्रकसी से द्र्ेष करती है, संत राग से न राग, न द्र्ेष से ,द्र्ेष करतेहैं।

६०३.

६०४. दुतुनया मृतूयु से डरती है, संत मृतूयु का आमिंगंन करतेहैं।

६०५. दुतुनया कोई न कोई र्ेशभूषा िारण करती है. संतं स्र्भार् िारण करतेहैं।

दुतुनया, अपने व्यक्क्तत्र् की रक्षा करती है, संत अपना व्यक्क्तत्र् खोकर मसद्िांत की रक्षा करतेहै।

६०६.

दुतुनया अपर्ाद का प्रचार करती है, सत मसद्िांत का प्रचार करते हैं।

६०७. जो सर्मान्य न हो उसेअपर्ाद कहते ेहैं, जो सार्भौम यानी तनर्र्ाद हो उसे मसद्िान्न्त कहते ेहैं।

६०८. दुतुनया आत्म र्ि्श्र्ास बोकर आपत्त्त का नाश करती है, संत आत्म र्ि्श्र्ास की रक्षा के मिए आपत्त्त का आदर करतेहैं।

६०९. दुतुनया युग का तनमाताि क्रकसी और को मानती है, संत नर्युग का तनमाणि स्र्यं ंही करतेहैं।

दुतुनया जीर् से ब्रह्म बनती है, संत ब्रह्म को भी भ्रम ही समझतेहैं।

६१०.

दुतुनया हदखनेर्ािी को कुछ मानकर देखती है, संतं हदखनेर्ािी को देखनेर्ािा ही जान कर देखते ेहैं।

६११.

६१२. दुतुनया का नाश करती है, संत, शाने, अज्ञान दोनों का नाश करते हैं।

६१३. दुतुनया बंिसैमुकु्त होती है, संत, बंि, मोक्ष दोनों से मुकु्त होते हैं ।

६१४.

६१५. दुतुनया, मन को रोकती है, संत, मन के रोकने को रोकते ेहैं।

६१६. दुतुनया, मसद्धियों को मसद्ि किरती है, संत मसद्ि को मसद्ि किरते हैं ।

६१७. दुतुनया, समाधि में समाधिस्ि होती है, संत, समाधि की समाधि यानी परम समाधि में समाधिस्ि होते हैं।

६१८. दुतुनया, दुतुनया देती है, संत, भगर्ान देते े

६१९. दुतुनया, िनर्ान र्नती है, संत हदर्ामिये र्नते है ।

६२२. दुतुनया, प्रपंच से सन्द्यास िेती है, संत, सन्द्यास से सन्द्यास िेतेहैं।

६२१. दुतुनया, भगर्ान से िम, ि अि, ि काम, मोक्ष मांगती है। संत, भगर्ान से भगर्ान को भी नहीं ंमांगते े।

कुछ भी मत बनो, भगर्ान भी मत बनो, जैसे हो र्ैसे ही रहो, बनना ही है तो संत बनो ।

६२२. आत्म स्र्रुप के बिो का यही फि है क्रक हमको बिो नहीं हुआ ।

६२३. अमुकु जगत में देखना हदखना है, आत्म जगतमें भासना है।

६२४. हदखना, देखना सापेक्ष है। भासना तनरपेक्ष है।

६२५. भासे तो आंख मत मूंदो । यहद हदखे तो आंख मूंदो ।

६२६. शरीर है इस र्ंकल्प का नाम देहाध्यास शरीर म ैंहूं इसका नाम हुआ देहामभमान अध्यास के त्याग में अमभमान का त्याग होता है।

अज्ञानी का व्यर्हार राग द्र्ेषात्मक होता है, बोिर्ान का व्यर्हार राग द्र्ेष रहहत होता है।

भास में मोह नहीं है, माननेमें मोह है।

६२७.

६२८.

६२९.

६३०. भास रहा है, र्ह है श्र्ेरेय, माना जाय यह है प्र्ेरेय ।

६३१. भासमान की पूजा ही पूज्य का पूजन है, इसी का नाम सेर्ा भी है, यही गुरुतनष्ठा अिर्ा गुरुभक्त है ।

श्र्ेरेय (भास) की पूजा में गुण, दोष नहीं हदखता ।

६३२. ज्ञान जगत में प्रारब्ि है, भगर्ान जगत में प्रारब्ि नहीं ।

६३३. भास रहा है, (श्रेय) अकम ि है। अमुक भास रहा है, (प्रेय) कम ि है।

६३४. जैसा है र्ैसा ही रहो। भास का रष्ट्रा मत बनो। रष्ट्रा बननेपर भास दृश्य हो जार्ेगा । रष्ट्रा, दशनि, दृश्य यह प्रय हो
जार्ेगा। जो प्रेय है र्ही जगत है।

दृश्य का परर्तनि होता है, भास का नहीं ।
६३५.
भास के बिो में अभास की अनुभूतत है।
६३६.
अभास की अनुभूतत में भास का अभार् है।

६३७. . भास के अभार् में भूमा का आगमन है।

माया की परेशानी है अमभमान, अमभमान का सबसे बडा रुप ब्रह्मामभमान । ब्रह्मा- मभमान का नाश गुरु नारायण
६३८
६३९. की कृपा से होता है ।
जब तक यह मन क्रकसी भी र्िषय का र्िषय करता है तब तक इसका नाम है है मन । जब तनर्िषिय हो जाता है
तब इसका नाम हो जाना है भास (जगती) और जो भास है र्ही अभास है ।

६४०.

६४१. क्जस समय मन दुखु रुप प्रतीत हो तब मन सर्िषय है। क्जस समय दुुःख सुख दोनों की प्रतीतत न हो र्ही तनर्िषय
है।

६४२. सर्िषय मन जगत है, तनर्िषय मन जगती है। जो जगती है सो भास है । जो भास है सो अभास है (में आत्मा है)

६४३. शब्द सुनाई पडे,े परन्द्तु अि िका भान न हो यही तनर्िषिय मन का स्र्रूप है ।

६४४. इक्न्द्रय द्र्ारा भास रहा है तब भी भास, भास नहीं । अभास में भास रहा है तब भी भास नहीं ।

परम समाधितनष्ठ पुरुष के देश में र्िक्षेप भी परम समाधि है।
६४५.
र्िशेष ज्ञान में प्रारब्ि का नाश नहीं होता सामान्द्य ज्ञान में प्रारब्ि का भी नाश हो जाता है।

६४६. मानने में अपरा भक्क्त होती है । जाननेमें परा भक्क्त होती है।

६४७. सर्भिार्ों के अभार् का दशनि ही आत्म बिो है ।

जो हो सो हो, जहांहो र्हीं हो, जैसेहो र्ैसेहो ।
६४८.

६४९.

६५०. स्त्र् के भार् में भार्ों का अभार् है।

अभार् के भार् में भासता स्भार् है ।

६५१.

भास के भास में भास का भास है।

६५२.

भास के अभार् में भास धचदाभास है।

६५३. . 'म ँको कुछ भी मानना र्ए्पययि है।

६५४ अक्स्तत्र् के अक्स्तत्र् में अक्स्तत्र् सदा स्त्र् है।

६५५.

क्स्तित की अक्स्तित में अक्स्तित क्स्तित है।

२५६.

२५७.

६५८.

क्स्तित और अक्स्तित का भास अचि क्स्तित है। हो र्ही 'में' का रूप है।

६५९.

ज्ञान का सिाक अहंब्रह्माक्स्म का अधिकारी है, आत्मा क्जज्ञासु ुनारायण पद का अधिकारी है ।

६६०. जो तनर्रि्ों तत्र् है र्ही भगर्ान है ।

भास के बिो में र्ासना का अत्यन्द्ताभार्। है।

६६१.

६६२.

६६३.

क्जस भार् में समस्त भार्ों (देह, जीर्, ब्रह्म) का अत्यन्द्ताभार् हो र्ही 'म' ँ का भार् है।

६६४.

क्जस रूप में समस्त रूपों का अत्यन्द्ताभार् हो र्ही 'म' ँ का रूप है ।

६६५.

क्जस गुण में समस्त गुणों का अत्यन्द्ताभार् हो र्ही 'म' ँ का गुण है।

६६६. क्जस कम ि में समस्त कमों का अत्यन्द्ताभार् हो र्ही ''म' ँ का कम िहै।

६६७.

र्कल्प का अक्स्तत्र् र्कल्पक के अबिो में हैं

२६८. र्श्र् की उत्पर्त्त, पिान, संहार मानना यही आत्मसंमोह है।

६६९.

अि िके भार् में हदखने देखने का भार् है।

२७०. अि िके अभार् में हदखने देखनेका अत्यन्द्ताभार् है।

जो रज र्ीय िसे पैदा हो ई शरीर है, जो इच्छा संकंल्प से पैदा हो ई रूप है ।

नाम, रूप र्कल्प के बाद देश, कािा, र्स्तु एर्ं ंकत्तािका र्कल्प होता है ।

६७१. रज्जूका भास जो आकार है र्ह र्स्त िनहीं है, सप िजो हदखता है र्ह र्स्त िहै। आकार जो भास है र्ह तो प्रकाश में भी भासता है ।

६७२. जगत हदखता है, भगर्ान भासता है।

६७३. रूप से अर्तार है, स्र्रूप से आत्मा है।

६७४. दुःखी व्यक्क्त को देखकर सहानुभूतत हदखाना या उसके दुःख को अपना दुःख समझना, िनी या र्ैभर् सम्पन्द्न व्यक्क्त के प्रतत मैत्री का भार् रखना, दयार्ान व्यक्क्त को देखकर प्रसन्द्न होना, और पापी को उपेक्षा की दृक्ष्ट्ट से देखना या उसकी ओर ध्यान न देना । इससे धचत्त की शुद्धि होती है और सबसे बडा सािन तो सत्संग है।

६७५. मन के रोकने का अभ्यास आत्मदेश का प्रर्ास है ।

६७६. मन के न रोकने का अभ्यास आत्मदेश का स्र्ायी तनर्ास है ।

६७७. र्ैकक्ल्पक र्स्तु का धचंतंन मन तनरोि की अपेक्षा करता है।

६७८. आत्मधचंतंन मन तनरोि की उपेक्षा करना है।

६७९. आत्मक्जज्ञासा आत्मदेश का प्रर्ेशद्र्ार है।

३८०. सािनों का र्ैराग्यर्ान ही आत्मदेश में पहुंच सकता है।

६८१. सािनों से र्ैराग्य होना संत कृपा पर तनभरि है।

६८२. संतकृपा आत्मक्जज्ञासा के पुजारी पर ही होती है।

६८३. आत्मक्जज्ञासा मन, र्चन, कम िद्र्ारा संत सेर्ा से ही होती है, अन्द्य सािनों से नहीं ।

६८४. संत उसी को आज्ञा देतेहैं जो अपना व्यक्क्तत्र् उनको नारायण जानकर आत्म समपणि कर देता है।

६८५. मन के तनरोि का फि र्ेशेष आनंद है।

६८६. मन के अतनरोि का फि सामान्द्य आनंद है। सामान्द्य आनंद का पयायिानंद तनत्यानंद िा आत्मानंद है। र्ेशेष आनंद का पयायि र्षयानंद, क्षणणक आनंद है।

६८७. क्षणणक अिर्ा र्षयानंद की अनुभूतत र्ृक्त्त द्र्ारा होती है और र्ही र्ाणी द्र्ारा अमभव्यक्त क्रकया जाता है। सामान्द्य

आनंद की अनुभूतत र्ृक्त्त रहहत होती है क्योंक्रक सामान्द्य आनंद में स्र्यं ंआत्मा ही है इसमिये म ेंआत्मा को मन र्ाणी सेपरे बताया गया है।

६८८. संत कृपा का अनधिकारी सामान्द्य आनंद का आनंद रहहत सुजु्यता का अनुभर् करता है और अधिकारी स्र्यं ं
आत्मा का ।

क्जस भार् में ब्रह्मभार् और सभिार् दोनों का अभार् हो जाता है उसे परमगुह्मज्ञान कहते ेहैं।

६८९.

६९०.

म ंैऐसा हूं, इसका बिो अन्द्य कृपा पर तनभरि है। म ंै जैसा है, इसका बिो 'म'ंै की ही कृपा पर तनभरि है।

६९१.

केरि् एक ही र्ंकल्पाभार् में अनन्द्त र्ंकल्पाभार् तनहहत है।

६९२.

बबना र्ंकल्प के ही जो भास रहा है, बौर क्जसमें भास रहा है उसमें यह भास नहीं है। न होते हुए जो भास रहा है
यही भगर्ान आत्मा की माया है।
र्ंकल्प की ही व्याख्या और व्याख्यान है।

६९३.

६९४.

क्जस समाधि में ये सब समाधियों (सर्ंकल्प, तनर्ंकिल्प आहद) समाधिस्ि हो जाती हैं उसेपरम समाधि कहते ेहैं
।

६९५.

६९६. ममिन ज्ञान में प्रारब्ि शेष है, र्ंमिज्ञान में प्रारब्िकिा भी नाश है ।

कम ियहद सत्य है तो इनकी तनर्ूर्त्त नहीं हो सकती और यहद असत्य है तो है ही नहीं ं। इसमिए कम िन सत्य है न
असत्य बक्ल्क भगर्ान आत्मा 'म'ंै पर कम िका र्ंकल्प है।
र्ंकल्प है ही नहीं यही सम्यक प्रकार से र्ंकल्प का अभार् होना है।

६९७.

अनुभर्किा में अनुभर् नहीं इसमिए नहीं और र्ंकल्पकिा में र्ंकल्प नहीं इसमिए नहीं ।

६९८.

यहद अनेक 'म'ंै हो तो सबका िक्ष्य भी मभन्द्न मभन्द्न हो, परन्द्तु ऐसा नहीं ेहै। सबका िक्ष्य एक ही है- आनंद की
६९९. प्राक्प्त, इस- सबका 'म'ंै एक है ।
र्ंकल्प (मान्द्यता) और र्ंकल्पक (मान्द्यता का आिार) के योग को कहते ेहैं योगमाया ।

है यहद 'है' न होता तो क्रकसी में होता क्रकसी में न होता इसमिए 'है' ही है जो
७००. कहता है 'है ।

७०१

'

७०२. कम िजगत में र्ंचार की गुंजाइश नहीं है और ज्ञान जगत में मान्द्यता की गुंजाइश नहींहै।

क्जस भार् का बुद्धि श्रोत है र्ह सीममत होता है और क्जस भार् का श्रोत 'म'ंै हूं र्ह असीममत होता है।

७०३.

क्रकसी भी व्यक्क्त के व्यक्क्तत्र् का पररज्ञान उसके काय ि(मसद्िान्द्त) पर तनभरि करता है।

७०४.

धचत्त धचत्त देश में है तो धचत्त नहीं, धचत्त धचत् ्देश में है तो भी धचत्त नहीं ।

७०५.

७०६. धचत्त का अक्स्तत्र् धचत् ्है, अक्स्तत्र् पर र्ि्कल्प धचत्त है

धचत्त में जो 'त्'् है यही अक्स्तत्र् पर र्ि्कल्प है और धचत्त में जो धचत् ्है यही धचत्त का अक्स्तत्र् है ।

७०७.

इक्न्द्रयांर्ि्षयों को ग्रहण करती हैं और आत्मा ग्रहण क्रकये हुए का अनुभर् करता है।

७०८. परमात्मा यहद अपने आप को कहे क्रक म ैंपरमात्मा हूं तो में भो कहूं क्रक में परमात्मा हू ।

७०९. ग्रहणकिा में नश्र्र है, अनुभर्किा में 'म'ैं ही हूं ।

७१०.